कुरुक्षेत्र

सितम्बर 1993 तीन रुपये

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत

सब्सिडी सीमा बढ़ाई गई

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सब्सिडी के लिए निर्धारित सीमा को 1000 रुपये तक बढ़ा दिया गया है। सीमा = वृद्धि सभी श्रेणियों के लाभार्थियों के लिए चालू वर्ष से मान्य होगी। दस राज्यों के एक-एक जिले में 'सब्सिडी' प्रणाली चरणबद्ध तरीके से लागू करने का भी प्रस्ताव है। ये राज्य हैं: आंध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल। इन राज्यों से कहा गया है कि वे अपने एक-एक जिले का चयन करें।

सरकार ने चालू वर्ष से समन्वित ग्रामीण कार्यक्रम के अंतर्गत प्रति परिवार सब्सिडी सीमा सामान्य क्षेत्रों में 3000 रुपये से बढ़ा कर 4000 रुपये, सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और मरू विकास कार्यकम वाले क्षेत्रों में 4000 रुपये से बढ़ाकर 5000 रुपये और अनुसूचित जाति और जनजाति के तथा शारीरिक रूप से विकलांग लाभार्थियों के मामले में 5000 रुपये से बढ़ाकर 6000 रुपये कर दी है।

2 अक्तूबर 1980 से पूरे देश में प्रारम्भ समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम मुख्य रूप से गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है। कार्यक्रम का उद्देश्य, पता लगाये गये ग्रामीण गरीब परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाना है। इसके अंतर्गत लक्षित समूहों को उत्पादक परिसम्पत्तियां तथा निवेश प्रदान किए जाते हैं। इस कार्यक्रम के लिए केन्द्र और राज्य आधा-आधा खर्च उठाते हैं। इसे केन्द्रीय प्रायोजित योजना के रूप में देश के सभी खण्डों में चलाया जा रहा है।

लक्षित समूह

इस कार्यक्रम से लाभ उठाने वालों में लघु तथा सीमान्त किसान; कृषि मजदूर तथा ग्रामीण कारीगर शामिल हैं। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में सबसे पहले ध्यान निर्धनतम लोगों पर दिया जाता है। यद्यपि गरीबी की रेखा 11,000 रुपये वार्षिक आय पर निर्धारित की गई है परन्तु इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उन ग्रामीण परिवारों को सहायता देने का लक्ष्य है जिनकी आय 8,500 रुपये वार्षिक से कम है। सबसे अधिक प्राथमिकता 6,000 रुपये तक वार्षिक आय वाले परिवारों को दी गयी है। लक्षित समूहों में भी अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों, महिलाओं, मुक्त हुए बंधुआ मजदूरों तथा शारीरिक रूप से विकलांग लोगों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अत: लाभ प्राप्त करने वाले परिवारों में से 50 प्रतिशत परिवार अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के होने चाहिए। मुक्त बंधुआ मजदूरों को सहायता देने में सबसे पहले प्राथमिकता दी जाती है। सहायता प्राप्त करने वाले परिवारों मे तीन प्रतिशत परिवार, शारीरिक रूप से विकलांगों के होने चाहिए। इसके अलावा ग्रामीण विकास में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए लाभार्थियों में कम से कम 40 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए।

सब्सिडी प्रणाली

सब्सिडी प्रणाली के अनुसार छोटे किसानों को 25 प्रतिशत, सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों के लिए 33.3 प्रतिशत और अनुसूचित जाति/जनजाति लाभार्थियों तथा शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए 50 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है।

वर्ष 1992-93 के दौरान 18 लाख 75 हजार परिवारों के लक्ष्य के मुकाबले 20 लाख 58 हजार परिवारों (109.79 प्रतिशत) को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से लाभ मिला। इनमें से 7 लाख 25 हजार परिवार अनुसूचित जातियों के हैं और 2 लाख 89 हजार अनुसूचित जनजातियों के हैं।

वर्ष 38 अंक 11 भाद्रपद-आश्विन 1915, सितम्बर 1993

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

संपादक : राम बोध मिश्र
सह संपादक : बलदेव सिंह मदान
उप संपादक : ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन) : एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक : बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बेक
आवरण सज्जा : आर0 के0 टंडन

एक प्रति : तीन रुपये, वार्षिक चंदा : 30 रुपये

फोटो साभार : रमेश चन्द्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय

अनुक्रम

बाल मजदूरी का आर्थिक गणित — 2
सुन्दर लाल कुकरेजा

हालात की जकड़न में बाल श्रमिक — 4
डा0 कैलाश चंद्र पपने

बाल श्रमिक और उनकी समस्याएं — 7
डा0 (कु0) पुष्पा अग्रवाल

बाल श्रमिकों की मुक्ति की समस्या — 12
रामजी प्रसाद सिंह

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या और निदान — 15
सैयद शमीम अनवर

भारत में निर्धनता और उसका निवारण — 16
डा0 गजेन्द्र पाल सिंह

पर्यावरण सुरक्षा में लोगों की भागीदारी — 19

हतप्रभ (कहानी) — 21
डा0 किरण बाला

जल संसाधन विकास समय की तात्कालिक मांग — 23
जयसिंह रावत

ऊर्जा संरक्षण में बैंकों की भूमिका — 25
इन्दु शेखर व्यास

जीतोस में जगी चेतना (सफलता की कहानी) — 27
किशन रतनानी

पंचायती राज संस्थाएं और स्थानीय वित्त की समस्या — 29
डा0 दीपा भास्कर

ग्राम सभा की बैठकें, समस्याएं व सुझाव — 30
बटुकेश्वर दत्त सिंह

भूमि सुधार क्यों जरूरी — 32
सतीश मिश्र

आंखों में तैरते हैं लहलहाती फसलों के स्वप्न — 35
प्रभात कुमार सिंघल

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

बाल मजदूरी का आर्थिक गणित

✍ सुन्दर लाल कुकरेजा

बाल श्रमिकों की समस्या विश्वव्यापी है, किन्तु भारत में यह अत्यंत गंभीर और जटिल है। इस समस्या के समाधान के लिए स्वतंत्रता के बाद से ही प्रयास किए जाते रहे हैं किन्तु सुरसा के मुंह की तरह यह अधिक विकराल होती चली गई। देश के संविधान की धारा 39 में ही बच्चों के शोषण और दमन के विरुद्ध संरक्षण की व्यवस्था कर दी गई थी। आजादी के तुरन्त बाद 1948 में बने फैक्ट्री कानून में 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों को काम पर लगाने की मनाही कर दी गई थी। बीस सूत्री कार्यक्रम में बंधुआ मजदूरों, विशेषकर बाल मजदूरों की मुक्ति और पुनर्वास का अभियान चलाया गया और 1986 में बाल श्रमिक उन्मूलन कानून बनाया गया। अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के दौरान बच्चों की स्थिति में सुधार और उन्हें शोषण से मुक्ति दिलाने के संकल्प दोहराए गए और उसके अनुरूप कदम भी उठाए गए फिर भी यह समस्या ज्यों की त्यों उपस्थित है। अनुमान है कि भारत में अभी भी चार से पांच करोड़ तक ऐसे बच्चे, जिन की आयु खेलने-खाने और पढ़ने की है, खेत-खलिहानों, फैक्ट्रियों-कारखानों, घरों-होटलों और ढाबों में दिन-रात मेहनत करके अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए मजबूर हैं। इनमें से अधिकांश को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक, खतरनाक और नैतिकता की दृष्टि से पतित परिस्थितियों में काम करना पड़ता है।

दुनिया भर में ऐसे करीब 20 करोड़ बच्चे हैं जो अपना शैशव और बचपन बेचकर अपने व बुजुर्गों के लिए रोटी कमाते हैं। भारत की तरह विश्व के अन्य देशों में भी गरीबी, बेरोजगारी के मारे बच्चे शोषण के शिकार हो रहे हैं। अनुमान है कि लेटिन अमरीका में सात प्रतिशत, अफ्रीकी देशों में 25 प्रतिशत और एशियाई देशों में 18 प्रतिशत बच्चे प्रतिदिन आठ से 16 घन्टों तक अत्यंत शोचनीय स्थितियों में काम करने को मजबूर हैं। ब्राजील में भारी विदेशी ऋण के बोझ से दबे और उस कारण शोषण के शिकार करीब 30 लाख बच्चे भी भूखों मरने से बचने के लिए काम पर जाने को विवश हैं। ईरान में छोटी-छोटी लड़कियां जब बड़ी होती हैं तो उनकी कमर झुक गई होती है क्योंकि उन्हें घन्टों बैठकर कालीन बुनने पड़ते हैं। थाइलैंड में बच्चे दिन भर जिन कोठरियों में काम करते हैं, रात को भी उन्हें उसी में बन्द रखा जाता है ताकि अगले दिन भी वह काम से भाग न सकें। कोरिया और ताइवान में कपड़े सिलने की फैक्ट्रियों में काम करने वाले बच्चे शुरू से बीमारी और रोगों को झेलने के आदी हो जाते हैं।

भारत में तो स्थिति इससे भी खराब है। इन सब देशों के शोषण के तरीकों के अलावा अन्य कई खतरनाक व स्वास्थ्य के लिए हानिकर उद्योगों में बच्चों को काम करना पड़ता है। भारत में बाल श्रमिकों की संख्या और इसलिए आगे चलकर अशिक्षितों की संख्या, भी सबसे अधिक है। अनुमान है कि भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में मजदूर वर्ग करीब 20 प्रतिशत का योगदान करता है और इस योगदान में लगभग सात प्रतिशत भाग बाल मजदूरों का होता है। भारत में कई उद्योग ऐसे हैं जो देश की अर्थव्यवस्था में पर्याप्त योगदान करते हैं, लेकिन विडम्बना यह है कि ये उद्योग मुख्यत: बच्चों की मेहनत और उनके शोषण पर आधारित हैं। चाहे मिर्जापुर के कालीन हों या मुरादाबाद के कलई के बर्तन, शिवकाशी की माचिसें और पटाखे हों या अलीगढ़ के ताले, सूरत में हीरों को तराशने और उन पर पालिश का धन्धा हो या बीड़ी बनाने का रोजगार हो, ये सब बच्चों के काम पर टिके हैं। खेती के काम में बेगार करने वाले, घरों में काम करने, शहरों के ढाबों-होटलों में काम करने वाले हजारों 'छोटू' इन संगठित उद्योगों के अलावा हैं।

नया कानून

कुछ विकसित देशों विशेषकर, अमरीका और जर्मनी की पहल के बाद बाल श्रमिकों की दयनीय स्थिति की ओर दुनिया का अधिक ध्यान गया है। इन देशों ने यह कानून बना दिया है कि जिन देशों में बाल श्रमिकों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन और निर्माण किया जाता है उन देशों से आयात नहीं किया जाएगा। उनके इस कानून को सबसे पहले कालीन उद्योग पर लागू किया जा रहा है। भारत, नेपाल और पाकिस्तान में कालीन उद्योग क्योंकि अधिकांशत: बच्चों पर ही आधारित हैं, इसलिए इन देशों पर इस 'हरकिन्स कानून' (अमरीकी सांसद, जिन्होंने यह कानून बनाने का प्रस्ताव रखा) का सबसे अधिक असर पड़ेगा। भारत से प्रति वर्ष लगभग एक हजार करोड़ रुपये के कालीनों का निर्यात अमरीका व यूरोपीय देशों को होता है लेकिन अब ये देश जो भी कालीन आयात करेंगे, उस पर लेबल लगा हुआ देखेंगे कि "यह

कालीन बाल श्रमिकों द्वारा बनाया हुआ नहीं है''। भारत में क्योंकि बाल श्रमिक ही अक्सर कालीन उद्योग से जुड़े हुए हैं। इसलिए हम अभी ऐसा लेबल लगाने की स्थिति में नहीं हैं। इसका अर्थ यह है कि अगर हमें अपना उद्योग धन्धा जारी रखना और उसका निर्यात करते रहना है तो हमें बाल श्रमिकों को इस उद्योग से मुक्त रखना होगा।

पिछले चालीस-पैंतालीस वर्षों से जिस बाल श्रमिक समस्या को कानूनी और सामाजिक व काफी हद तक राजनीतिक उपायों से दूर नहीं किया जा सका, उसे अब आर्थिक विवशता से हल करना ही पड़ेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि अगर बाल श्रमिकों को कालीन उद्योग से मुक्त कर दिया गया और बाद में यही स्थिति अंन्य उद्योगों में भी आ गई तो उन बच्चों के रोजगार का क्या होगा जो अपनी गरीबी और बेहाली के कारण ही काम धन्धा करने पर मजबूर हुए हैं।

मिथ्या धारणा

सच पूछा जाए तो यह धारणा मिथ्या है कि बाल मजदूरों के बिना भारत के कई उद्योग धन्धे चौपट हो जायेंगे या अगर बच्चों को इन उद्योगों में काम न मिला तो उनके परिवार की आर्थिक स्थिति और खराब हो जाएगी। वस्तुस्थिति तो यह है कि बच्चों को इन खतरनाक, हानिकारक और शोषक उद्योगों में काम देकर हम अपने ऐसे बहुमूल्य मानव संसाधनों का दुरुपयोग और उन्हें बर्बाद कर रहे हैं। जो बच्चे बड़े होकर अपनी प्रतिभा क्षमता और कुशलता व परिश्रम से देश की अर्थव्यवस्था में अमूल्य योगदान कर सकते हैं, उनकी शक्ति को हम उनके बचपन में ही व्यर्थ गवां रहे हैं।

अन्धेरी, तंग गलियों और काली कोठरियों या बन्द दरवाजों के पीछे अपनी रोटी के लिए मजबूर और सहमे हुए बचपन को उसके नैसर्गिक विकास, उसकी शिक्षा दीक्षा और उन्मुक्त वातावरण से वंचित करके हम न केवल उन बच्चों के प्रति अन्याय कर रहे हैं अपितु देश के भविष्य के प्रति भी अपराध कर रहे हैं। आर्थिक उदारता और विकास की ओर बढ़ते युग में हम इस वास्तविकता की उपेक्षा नहीं कर सकते कि इन बच्चों को, जिन्हें आठ-दस वर्ष की आयु में खुले मैदान में खेलना और स्कूलों में पढ़ते होना चाहिए, कारखानों-फैक्ट्रियों और छोटे मोटे धन्धों में उलझा कर हम उन्हें उस शिक्षा से वंचित कर रहे हैं जो विकास और प्रगति का मूल मंत्र है। सच तो यह है कि अपने आज के लिए हम उन बच्चों और देश के भविष्य से खिलवाड़ कर रहे हैं।

मजदूरी और शिक्षा

भारत का संविधान जब लागू हुआ था, तब यह संकल्प किया गया था कि दस वर्षों के अन्दर छः से चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के अवसर उपलब्ध करा दिए जायेंगे। लेकिन आज चालीस वर्ष बाद भी हम अपने उस लक्ष्य से काफी पीछे हैं और हमारे देश में आज भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य नहीं है। सरकार, अपने सभी प्रयासों के बावजूद सबके लिए स्कूल नहीं खोल सकी, भले ही प्राथमिक स्कूलों की संख्या 1950 में 2,10,000 से बढ़ कर 1990 में पांच लाख से भी अधिक हो गई है। आज भी देश के लगभग आधे बच्चे -- लगभग साढ़े आठ करोड़ बच्चे -- स्कूल जाने के बजाए पशु चराते हैं, घरेलू नौकर हैं या कालीन, चूड़ियों, शीशे, कपड़े सीने अथवा हीरों पर पालिश कर उन्हें चमकाने की फैक्ट्रियों में काम करने जाते हैं। कुछ अभागे तो ऐसे भी हैं जिन्हें यह काम भी नहीं मिल पाता और वे भीख मांग कर सड़कों पर गुजारा करते हैं।

शिक्षा में पूंजी निवेश

सारे विश्व में आज आर्थिक समृद्धि के लिए बच्चों की शिक्षा में धन लगाना, बेहतर पूंजी निवेश माना जा रहा है, किन्तु भारत अब भी इसका अपवाद बना हुआ है। भारत की तरह अन्य कई देशों में गरीबी की समस्या है, लेकिन उन्होंने शिक्षा के प्रसार और बाल श्रमिकों की मुक्ति के लिए उसे बाधा नहीं बनने दिया। जिन देशों की प्रति व्यक्ति आय भारत से भी कम है, उन्होंने भी शिक्षा में निवेश करके प्रगति कर ली है। भारत और चीन, लगभग एक ही समय स्वतंत्र हुए थे, किन्तु अधिक आबादी के कारण चीन में साक्षरता, भारत से आधी थी। उसने सबको शिक्षा पर जोर दिया और आज चीन में निरक्षरता की दर भारत से आधी है। दक्षिण कोरिया और ताइवान में एक पीढ़ी पहले तक घोर गरीबी और अशिक्षा व्याप्त थी। तब उनकी प्रति व्यक्ति आय भारत के बराबर थी। लेकिन आज वहां 90 प्रतिशत से अधिक साक्षर हैं। इसके मुकाबले, हम अभी केवल 43 प्रतिशत को ही साक्षर कर पाए हैं। ऐसी स्थिति में बाल श्रमिकों की समस्या का उन्मूलन होने में अभी वर्षों लग सकते हैं।

बाल मजदूरी व काम में अन्तर

यहां बाल मजदूरी और उनके काम में अन्तर को समझना आवश्यक है। भारत में अक्सर तर्क दिया जाता है कि छोटे-छोटे बच्चे अपने ही परिवार या परिवेश में उनके धन्धे बचपन में ही सीखने लगते हैं जिससे आगे चल कर उनमें पारंगत हो जाते हैं। इसलिए बाल श्रमिकों को हटाने का अभियान अनुचित है।

शेष पृष्ठ 6 पर

हालात की जकड़न में बाल श्रमिक

डा. कैलाश चन्द्र पपने

बच्चे किसी भी देश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्पदा हैं। इसके बावजूद बच्चे अपने अधिकारों को प्राप्त करने से वंचित रहते हैं। विश्व भर में बड़ी संख्या में बच्चों के अभावग्रस्त जीवन को देखकर विश्व जनमत जाग्रत हुआ और 1990 में पहली बार 150 देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने एक शिखर सम्मेलन में बच्चों के अधिकारों के बारे में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन पर सहमति प्रकट की। बाल अधिकार सम्मेलन में कहा गया है कि संस्कृति, जाति, रंग या अमीरी गरीबी की विभिन्नताओं के बावजूद विश्व भर के बच्चों के कुछ मौलिक अधिकार हैं। बाल अधिकारों की विश्वव्यापी मान्यता के बावजूद यह भी एक ठोस तथ्य है कि कई बच्चे बहुत छोटी उम्र में ही रोजी रोटी के संघर्ष में पड़ जाते हैं। शिक्षा ग्रहण करने, खेलने-कूदने व स्वास्थ्य बनाने की उम्र में वे अत्यंत शोषणपूर्ण परिस्थितियों में काम करने को मजबूर हो जाते हैं। अनेक देशों में खासतौर पर विकासशील देशों में बच्चे कई प्रकार के प्रत्यक्ष व परोक्ष रोजगार में लगे हुए हैं। पिछड़े देशों में गरीबी व अज्ञान के कारण बच्चों की स्थिति अत्यंत भयावह बनी हुई है।

भारत में भी संगठित व असंगठित क्षेत्रों में बड़ी संख्या में बाल मजदूर कार्यरत हैं। इनकी स्थिति पर बार-बार चिंता प्रकट किए जाने के बावजूद बाल मजदूरी की समस्या बनी हुई है। देश की अन्य अनेक समस्याओं की भांति बाल मजदूरी की समस्या भी अर्थव्यवस्था की हालत और सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। बच्चे अपनी पारिवारिक परिस्थितियों के कारण या अभिभावकों की आय बढ़ाने के लिए मजदूरी करने लगते हैं। उम्र का जो हिस्सा खेलने-कूदने, प्यार और शिक्षा का हक प्राप्त करने का होता है उसमें वे खेत में, कारखाने में या ढाबे में खट रहे होते हैं।

बाल मजदूरी की समस्या

समाजशास्त्रियों व समाज कल्याण के बारे में विश्व स्तर पर जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र ने वर्ष 1979 को अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया। भारत सरकार ने भी अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष में बाल मजदूरी की समस्या के प्रति गंभीर चिंता का प्रदर्शन करते हुए 16 सदस्यीय समिति का गठन किया था। श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी की अध्यक्षता में इस समिति को बाल मजदूरी के स्वरूप, मौजूदा कानूनों के स्तर के अध्ययन व बाल मजदूरों के कल्याण के उपाय सुझाने का दायित्व सौंपा गया था।

वास्तव में बाल मजदूरी की समस्या हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। भारत के कृषि समाज में बच्चे कृषि व पारम्परिक व्यवसाय में सहायता करते व हाथ बंटाते हुए काम सीखते थे। यह परोक्ष मजदूरी एक प्रकार से पारिवारिक जीवन का ही विस्तार थी, परन्तु देश में औद्योगिकरण के बढ़ने के साथ ही बाल मजदूरी का स्वरूप भी बदला है। गांवों से शहरों की तरफ पलायन बढ़ा है। औद्योगिकरण व बढ़ते शहरीकरण के साथ ही बाल मजदूरी के विविध स्वरूप उभरते गए। पारिवारिक व्यवसाय के बंधन टूटते गए और बच्चों को भी एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपने नियोक्ता के पास मजदूरी के लिए जाना पड़ा। उसे अपनी अपनी समस्याओं से खुद ही जूझना पड़ा तथा काम के स्थान पर अभिभावकों के संरक्षण से वंचित भी रहना पड़ा। यह बात दूसरी है कि स्वतंत्र रूप से मजदूरी करने को विवश बच्चों की आय अंततः परिवार के मुखिया के हाथ में पहुंच जाती है।

भारत की आजादी के बाद एक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने के प्रयास किये गये। बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई संवैधानिक उपाय किए गए जिनसे बाल मजदूरी व बाल विकास के बीच विरोधाभास को कम करने की गुंजाइश उत्पन्न हुई। जैसे पाश्चात्य देशों की औद्योगिक क्रांति से जुड़े बाल मजदूरी के अभिशाप से निपटने के उपायों को विश्वव्यापी मान्यता भी मिली। बाल मजदूरों के कल्याण के विविध उपायों को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्तावों का जामा भी पहनाया गया। भारत व कई अन्य विकासशील देशों ने भी इन प्रस्तावों को अपनाया। इनके बावजूद बाल मजदूरी की प्रथा समाप्त नहीं की जा सकी तथा उसके उन्मूलन व बच्चों के शोषण की रोकथाम के उपायों पर चर्चा जारी है।

इस बारे में तो संदेह नहीं है कि बाल मजदूरी की प्रथा एक अभिशाप है। मजदूरी में लगे बच्चों को न केवल अपनी शारीरिक क्षमता से कहीं अधिक समय तक श्रम करना पड़ता है वरन् रसायनों और विषाक्त पदार्थों जैसे स्वास्थ्य के लिए खतरों से जूझना पड़ता है। उन्हें सौंपा जाने वाला कार्य नीरस, ऊबाऊ व

भावी संभावनाओं की दृष्टि से बेकार होता है। अक्सर नियोक्ता बाल मजदूरों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, उन्हें कम मजदूरी देते हैं तथा उनका यथासंभव शोषण करते हैं। उन बच्चों का शारीरिक व मानसिक विकास रुक जाता है क्योंकि शरीर की जिस ऊर्जा का इस्तेमाल उनके विकास में होना चाहिए था वह आजीविका कमाने के संघर्ष में चूक जाती है।

बाल मजदूरी को बढ़ावा मिलने का प्रमुख कारण उनके परिवारों की भीषण गरीबी में निहित है। परिवारों को भुखमरी से बचाने के संघर्ष में बच्चों को भी योगदान करना पड़ता है। भले ही उनके द्वारा अर्जित मजदूरी की मात्रा न्यून हो, परन्तु परिवार के अस्तित्व को बनाये रखने में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। कई अभागे बच्चों पर तो परिवार की पूरी ही जिम्मेदारी होती है। आर्थिक दबावों के कारण गरीब परिवारों के मां बाप बच्चों की शिक्षा व भविष्य निर्माण की गतिविधियों पर धन खर्च नहीं कर सकते हैं। वे चाहते हैं कि बच्चे अपना खर्च स्वयं जुटाएं और हो सके तो परिवार को भी आय बढ़ाकर मदद दें। उनका यह विचार भी होता है कि काम पर जाने से बच्चा आवारगी से बचता है तथा अनुशासित रहता है। इसके अलावा बच्चों के काम पर चले जाने से मां बाप को भी एकांत मिल जाता है और निजी जीवन के कुछ सुखद क्षण मिलते हैं। नियोक्ता भी बाल श्रमिकों को काम देना पसन्द करते हैं क्योंकि बच्चों से मनमाना काम करवाना आसान होता है। बाल श्रमिक मजदूर संगठनों में भी भागीदारी नहीं करते। कई नियोक्ता शोषण की भावना से नहीं, भुखमरी से बचाने की उदात्त भावना के कारण भी बच्चों को मजदूरी पर रख लेते हैं।

बाल मजदूरों की संख्या

भारत में बाल मजदूरों की वर्तमान संख्या के बारे में निश्चित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु के श्रमिकों की संख्या 1.07 करोड़ थी जोकि बच्चों की कुल जनसंख्या का 4.66 प्रतिशत थी तथा देश की कुल श्रमिक संख्या का 5.95 प्रतिशत थी। 1.07 करोड़ बाल श्रमिकों में से 79 लाख लड़के थे तथा 28 लाख लड़कियां थीं।

1981 की जनगणना में असम को छोड़कर नमूना सर्वेक्षण के अनुसार पर बाल श्रमिकों की संख्या 1.36 करोड़ आंकी गयी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण जिनके आंकड़ों को विश्सनीय माना जाता है, ने 1977-78 में सर्वेक्षण के बाद 4 से 14 वर्ष के बीच आयु वाले श्रमिकों की संख्या 1.66 करोड़ बताई। इसी संगठन द्वारा 1987-88 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार इसी आयु वर्ग के बाल श्रमिकों की संख्या लगभग 1.70 करोड़ है। विश्व भर में लगभग 20 करोड़ बच्चे धनोपार्जन की गतिविधियों में संलग्न हैं और भारत में इनकी संख्या सर्वाधिक बताई जाती है। भारत के कुल श्रम बल में बाल श्रमिकों की संख्या लगभग 7 प्रतिशत है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में उनका योगदान 20 प्रतिशत आंका जाता है। बाल मजदूरी की प्रथा ग्रामीण क्षेत्र में अधिक है। 1981 के आंकड़ों के अनुसार 35.93 प्रतिशत बाल मजदूर खेती के काम में हाथ बंटाते हैं जबकि 42.75 प्रतिशत बाल मजदूर कृषि मजदूरों के रूप में काम करने को मजबूर हैं। लगभग 8.64 प्रतिशत बाल मजदूर उत्पादन, सेवा व मरम्मत आदि के क्षेत्र में कार्यरत हैं। लगभग 6.30 प्रतिशत बाल मजदूर पशुपालन, वन में मछली पकड़ने व शिकार खेलने के काम में लगे हैं। बाल श्रमिकों के बीच बालिकाओं का अनुपात सामान्य मजदूरों के बीच महिलाओं के अनुपात से अधिक है, बाल मजदूरों के शहरी, ग्रामीण व बालक-बालिका वितरण स्वरूप को देखा जाये तो कहा जा सकता है कि बालकों के बीच 59.83 बाल मजदूरी गांवों में तथा 6.60 प्रतिशत शहरों में सक्रिय है। बालिकाओं के बीच 31.31 प्रतिशत गांव में और 2.26 प्रतिशत शहरों में है।

एक तरफ तो बाल श्रमिकों के बारे में ये तमाम आंकड़े हैं और दूसरी तरफ कुछ गैर सरकारी स्वयंसेवी संगठन दावा करते हैं कि देश में बाल मजदूरों की संख्या साढ़े पांच करोड़ है, ये संगठन सरकार की इस व्यवस्था को भी गलत बताते हैं कि गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा और जनसंख्या वृद्धि के कारण बाल मजदूरी की प्रथा बढ़ रही है। उनका मानना है कि इसके विपरीत स्थिति यह है कि बाल मजदूरी के कारण देश में बेरोजगारी है और बच्चों के बीच अशिक्षा व गरीबी है। यदि ये साढ़े पांच करोड़ रोजगार अवसर वयस्कों को दिए जाएं तो उनका यह शोषण नहीं किया जा सकता जोकि बच्चों का होता है। बच्चों से नाममात्र की मजदूरी देकर काम करवाया जाता है जबकि वयस्कों का इस प्रकार शोषण संभव नहीं है। जब वयस्कों को पूरी मजदूरी मिलेगी तो परिवार की हालत सुधरेगी और बच्चे शिक्षा ग्रहण करने के लिए भी जा सकेंगे।

फिलहाल बाल मजदूरों की स्थिति यह है कि फिरोजाबाद की रंग बिरंगी चूड़ियां हों, मिर्जापुर के नरम व आकर्षक कालीन हों, मुरादाबाद का पीतल का सामान हो या अलीगढ़ के ताले हों शिवकाशी की माचिस व आतिशबाजी का सामान हो या हीरों की तराशी व पालिश हो, ईंट के भट्टे व पत्थर के खदान हों या ढाबे व होटल, सभी जगह देश के नौनिहाल बच्चों का पसीना गिरता है।

संगठित औद्योगिक क्षेत्र में बाल मजदूरी की समस्या कुछ कम हुई है परन्तु असंगठित क्षेत्र में यह बढ़ती जा रही है। गांवों की अपेक्षा शहरों में कार्यरत बाल मजदूरों के कार्यों में अधिक विविधता है। शहरों में ये बाल मजदूर घरेलू नौकर, वेटर, मजदूर, बुनकर, श्रमिक व दुकानों में सहायक आदि के रूप में काम करते हैं। सीमेंट उद्योग, कपड़ों की रंगाई, अभ्रक उद्योग, बीड़ी उद्योग, कालीन उद्योग, चमड़ा, साबुन, ऊन, भवन उद्योग, स्लेट, पैंसिल व धातु पालिश आदि उद्योगों में भी बड़ी संख्या में बाल श्रमिक हैं।

कानूनी उपाय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 में कहा गया है कि 14 वर्ष से कम का कोई भी बालक-बालिका कारखाने, खदान या अन्य हानिकारक उद्योग में नहीं लगाया जा सकता। संविधान के अनुच्छेद 39 (सी) में भी व्यवस्था है कि छोटी उम्र के बच्चों को आर्थिक जरूरतों के कारण उनकी उम्र व शक्ति की दृष्टि से अनुपयुक्त व्यवसायों में नहीं लगाया जा सकता है। अनुच्छेद 39 एफ में घोषणा की गयी है कि बचपन व जवानी का शोषण रोका जायेगा। बाल मजदूरी को रोकने के लिए जो कानूनी उपाय किये गये हैं उनमें बाल श्रमिक (निषेध व नियमन) अधिनियम 1986 प्रमुख है। इसके अलावा फैक्ट्री एक्ट 1948, न्यूनतम मजदूरी कानून 1948, खदान कानून 1952, मोटर वाहन कानून 1958, मोटर परिवहन श्रमिक कानून 1961, एंप्रेटिसशिप नियम 1962, बीड़ी व सिगार श्रमिक (सेवाशर्ते) कानून 1966 तथा विकिरण संरक्षण नियम 1971 में बाल श्रमिकों के हित में अनेक प्रावधानों का समावेश है।

इन प्रयासों और तमाम उपायों के बावजूद बाल मजदूरी के कलंक को विराम नहीं लग पाया है। जाहिर है कि सरकार व बाल कल्याण से जुड़े संगठनों के सामने अनेक चुनौतियां अभी भी बाकी हैं।

कार्यालय संवाददाता दैनिक हिन्दुस्तान
सी-2, प्रेस अपार्टमेंट्स
23, पटपड़ गंज, दिल्ली-92

पृष्ठ 3 का शेष

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इस समस्या के इस पहलू पर गम्भीरता से विचार किया है और यह सर्वमान्य है कि जिन कामों को बच्चे छुटपन से सीखते रहते हैं, उनमें उनकी कुशलता, कला बन कर निखरती है, लेकिन अन्तर तो सीखने और मजदूरी करने में है। बचपन की अन्य जरूरतों--खेलकूद, पढ़ाई और स्वच्छंद व्यवहार को पूरा करते हुए यदि कोई बच्चा या बच्चे किसी काम को सीखते हैं तो उस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। आपत्ति तब होती है जब कोई कला या काम सीखने के लिए बच्चे को विवश किया जाए। पैसे के लिए काम करना या नियमित रूप से मजदूरी करने पर विवश होना अवांछनीय है और जिन देशों में या जिन बच्चों के साथ ऐसा होता है, वहां की सामाजिक, आर्थिक स्थितियां अच्छी नहीं कही जा सकती। अगर किन्हीं कारणों से बच्चे मजदूरी करने पर विवश होते हैं, तो उनका शोषण करने वाले किसी भी सीमा तक रुकते नहीं हैं। इसलिए कई खतरनाक रसायनों वाले धन्धों में भी बच्चों को लगा दिया जाता है।

हो सकता है कि आर्थिक गणित के हिसाब से आज बच्चों से काम और मजदूरी करा लेना ठीक लगता हो, लेकिन दीर्घकाल में ऐसा करना विशुद्ध हानि ही पहुंचाने वाला है। इससे जहां बच्चे और देश का बचपन नष्ट होता है, वहीं देश का यौवन बीमार, अशक्त और अक्षम बन जाता है। फिर, भारत में जहां पहले ही काफी संख्या में वयस्क मजदूर बेरोजगार हों, बच्चों को मजदूरी के लिए मजबूर करना सही नीति नहीं कहा जा सकता। दूरदृष्टि से सोचें तो बाल मजदूर की लागत जो आज आधी या चौथाई लगती है, आगे चल कर कई गुना अधिक हानिकारक और मंहगी पड़ती है। इसलिए तात्कालिक लाभ को छोड़कर बाल मजदूरी की शर्मनाक स्थिति से जितनी जल्दी हो सके, मुक्त होने का प्रयास ही समझदारी है।

बी-7, प्रेस एन्कलेव,
साकेत,
नई दिल्ली -110 017

बाल श्रमिक और उनकी समस्याएं

✍ डॉ0 (कु0) पुष्पा अग्रवाल

बाल श्रम भारतीय श्रम व्यवस्था पर काला धब्बा है। स्वतंत्रता के चार दशक पूरे हो जाने के बाद भी इसे कुछ ज्यादा हल्का तक नहीं किया जा सका है। भारत में अन्य अधिकांश समस्याओं के समान बाल श्रमिक की समस्या भी देश की आर्थिक-सामाजिक स्थिति से जुड़ी है। सामाजिक परिस्थितियां और आर्थिक आवश्यकताएं ही बच्चों को मजदूरी के लिए विवश करती हैं। अधिकतर बाल श्रमिक कम मजदूरी और कौशल के निचले स्तर पर काम करते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में विकास योजनाओं के निर्माताओं का ध्यान राष्ट्रीय उत्पाद, निवेश, व्यापार और उत्पाद लक्ष्यों जैसे आर्थिक सूचकों पर ही लगा रहा। उन्होंने मानव विकास को अपेक्षित महत्व नहीं दिया। किन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि आर्थिक उन्नति के आधार पर यह सुनिश्चित नहीं हो सकता कि सभी लोगों की आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी। वास्तव में मानव विकास को सर्वोपरि महत्व दिया जाना जरूरी है। किसी भी राष्ट्र को सच्चे अर्थों में उन्नत तभी कहा जा सकता है जब वहां के सभी नागरिकों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हों। यह मानवीय लक्ष्य वांछनीय ही नहीं वरन् तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से सम्भव है। इसकी पूर्ति के लिए मुख्य आवश्यकता राजनैतिक इच्छाशक्ति की है।

वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार देश में 1 करोड़ 70 लाख 40 हजार बच्चे बाल श्रमिक थे। यह उस समय की कुल बाल जनसंख्या का 4.66 प्रतिशत और श्रमिक बल का 5.95 प्रतिशत था। इनमें से 70 लाख 9 हजार लड़के और शेष लड़कियां थीं। वर्ष 1981 में यह संख्या 1 करोड़ 30 लाख रह गई थी। वर्ष 1983 में योजना आयोग के अनुसार यह संख्या 1 करोड़ 70 लाख 36 हजार थीं। वर्ष 1986 में श्रम मंत्रालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार पांच से चौदह साल के बाल श्रमिकों की संख्या 1 करोड़ 66 लाख थी। पांच वर्ष से कम आयु के बाल श्रमिकों की संख्या इससे अलग है।

बच्चे को भारत में भगवान का रूप माना गया है। वास्तव में वे राष्ट्र की जीवन्त सम्पदा हैं। उनका शोषण राष्ट्र के विकास में सबसे बड़ी रुकावट है। आज भी परिवार की आर्थिक विवशताओं के कारण हजारों बच्चे स्कूल की चौखट भी पार नहीं कर पाते और अनेकानेक को इन्हीं बाध्यताओं के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ देनी पड़ती है। ये बाल श्रमिक आजीविका, शिक्षा, प्रशिक्षण और कार्यगत कौशल से वंचित रह जाते हैं। परिणामतया न उनका मानसिक विकास हो पाता है और न ही बौद्धिक विकास संभव है।

वैधानिक स्थिति

बाल श्रम के इस धब्बे को धोने के लिए सरकार ने कुछ प्रयास न किए हों, ऐसी बात नहीं हैं। इसके लिए कई अधिनियम बनाए गए हैं। वर्ष 1986 में बाल श्रम (उन्मूलन व नियमन) बनाया गया। इससे पहले लगभग 11 अधिनियम थे जिनमें बालश्रम को नियन्त्रित एवं अधिनियमित किया गया है। इनमें से दो स्वतन्त्रता-पूर्व 1933 और 1938 में बने थे। ये क्रमश: बाल (बंधुआ श्रम) अधिनियम और बाल रोजगार अधिनियम हैं। पहले में बंधुआ श्रम पर रोक लगाई गई थी और दूसरे में कुछ विशेष उद्योगों और क्षेत्रों में 14 साल से कम आयु के बच्चों को लेने पर रोक लगाई गई थी। इन उद्योगों में बीड़ी लपेटना, कालीन, सीमेंट, दियासलाई, कपड़ा छपाई, रंगाई, अभ्रक काटना आदि आते हैं। वर्ष 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम और फैक्टरी अधिनियम बने जिनके तहत बच्चे को काम पर लगाने की न्यूनतम आयु 15 वर्ष निर्धारित की गई किन्तु आज लगभग 45 वर्ष बाद भी 58 हजार बन्धुआ बाल श्रमिक हैं और तमाम निषिद्ध क्षेत्रों में वे काम कर रहे हैं। वर्ष 1951 में बागान श्रम अधिनियम, 1952 में खदान अधिनियम, 1961 में व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम, 1962 में आणविक ऊर्जा अधिनियम, 1966 में बीड़ी एवं सिगार अधिनियम बने। इनमें बाल श्रमिकों को रोजगार देते समय उनकी न्यूनतम आयु और कार्य के अधिकतम घण्टे आदि निर्धारित किए गए।

भारतीय संविधान की 24 वीं धारा के अनुसार "14 वर्ष की आयु से कम के किसी बच्चे को किसी फैक्टरी अथवा खान में या किसी ऐसे काम पर जो जोखिम भरा हो, नहीं लगाया जा सकता है।"

धारा 39(सी) के अनुसार "श्रमिकों को स्त्री, पुरुषों और कम आयु के बच्चों और नागरिकों को आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर किसी ऐसे व्यवसाय में लगने के लिए बाध्य नहीं किया

जा सकता जो उनके स्वास्थ्य और शक्ति के अनुकूल न हो।"

बाल श्रमिक की समस्याओं को कम करने के दृष्टिकोण से बच्चों को नौकरी पर लगाने के लिए निम्नांकित कानून लागू किए गए :

बाल श्रमिक अधिनियम 1938 : अधिनियम के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु का व्यक्ति बच्चा है। अधिनियम बच्चों को काम के लिए बंधक रखने के अनुबंध का निषेध करता है।

अधिनियम यह भी कहता है कि बच्चे को श्रमिक रूप से बंधक रखने से संबंधित कोई भी अनुबंध अवैध है और ऐसे अनुबंध या बच्चे को बंधक बना कर नौकरी पर लगाने के लिए दण्ड का विधान है।

बाल श्रमिक (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986: यह अधिनियम कुछ रोजगारों में बच्चों को नियुक्त करने पर रोक लगाता है तथा दूसरे कुछ रोजगारों में बच्चों की कार्य शर्तों को नियमित करता है।

धारा तीन : किसी ऐसे व्यवसाय में, जो अनुसूची के भाग "ए" में परिगठित किया गया हो अथवा किसी ऐसे कारखाने में जो अनुसूची "बी" में समाविष्ट हो, किसी बच्चे की नौकरी पर नहीं रखा जा सकता है और न ही काम करने की अनुमति दी जा सकती है बशर्ते कि उस कारखाने में जहां पर इस धारा में उल्लिखित कोई भी बात लागू न होती हो।

अनुसूची - भाग "ए"

निम्न से संबंधित कोई भी व्यवसाय :-

1. रेलवे द्वारा मुसाफिर गाड़ी, मालगाड़ी आदि परिवहन।
2. राख उठाना, राख के डिब्बे खाली करना अथवा रेलवे परिसर में भवन निर्माण कार्य।
3. रेलवे स्टेशन पर कैटरिंग संस्थान में काम करना या एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म पर या चलती गाड़ी में फेरी वाले के रूप में माल बेचना।
4. रेलवे स्टेशन के निर्माण से संबंधित कार्य अथवा ऐसा कोई अन्य काम, जहां ऐसा कार्य बन्द परिसर में या रेलवे लाइनों के बीच में किया जाना हो।

भाग "बी" संसाधन

1. बीड़ी बनाना।
2. कालीन बुनना।
3. सीमेन्ट का निर्माण, जिसमें बोरों की भराई भी समाविष्ट है।
4. कपड़ा छापना, रंगना और बुनना।
5. सिगरेट, विस्फोटकों और आग से संबंधित सामग्री का निर्माण।
6. अभ्रक काटना और पतरे उतारना।
7. लाख निर्माण।
8. साबुन बनाना।
9. चमड़ा रंगना (टेनिंग)
10. भवन निर्माण उद्योग।

बाल श्रमिकों को किसी रोजगार में नौकरी देने के संबंध में उपरोक्त अधिनियमों के अतिरिक्त अनेक अन्य कानून और अधिनियम बनाए गए हैं तथा अनेक धाराएं और प्रावधान लागू किए गए हैं। उदाहरणतया नियुक्ति के समय न्यूनतम आयु, कार्य के अधिकतम घण्टे, रात को कार्य पर निषेध आदि। जिन अधिनियमों में इस प्रकार के प्रावधान समाविष्ट हैं उनमें न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, फैक्टरी अधिनियम 1948, बाल श्रम अधिनियम 1951, खान अधिनियम 1952, इण्डियन मर्चेन्ट शिपिंग अधिनियम 1958, मोटर परिवहन श्रमिक अधिनियम 1961, एप्रेन्टिस एक्ट 1961, बीड़ी एवं सिगार श्रमिक अधिनियम 1966 आदि शामिल हैं।

सम्पूर्ण विश्व के बाल श्रमिकों के हित को दृष्टिगत रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संस्था ने जिन 18 कन्वेशन्स को अपनाया है, भारत सरकार ने उनमें से निम्नलिखित 6 कन्वेनशन्स को कुछ अनुशोधन सहित भारत के लिए अंगीकार कर लिया है। इन कन्वेनशन्स को देश में लागू किया जा रहा है।

- न्यूनतम आयु (उद्योग) कन्वेनशन (5) 1919
- न्यूनतम आयु (ट्रीम्मरस एवं स्टॉकर) कन्वेनशन (15) 1921
- न्यूनतम आयु (भूगर्भ में कार्य) कन्वेंशन (123), 1973
- चिकित्सा जांच (सागर) कन्वेनशन (16), 1921
- रात में काम (उद्योग) कन्वेंशन (6), 1919
- रात में काम (उद्योग पुनर्विचारित्) कन्वेनशन (90) 1948

इन सभी कन्वेनशन्स में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कन्वेनशन वर्ष 1973 में स्वीकृत न्यूनतम आयु (संख्या 138) है। जिसके अनुसार विकसित देशों के लिए न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गई है। किंतु जोखिमपूर्ण व्यवसायों के लिए न्यूनतम आयु-सीमा 18 वर्ष है।

बाल श्रमिक सैल की स्थापना वर्ष 1979 में हुई थी। यह सैल सरकार और गैर सरकारी संस्थानों में कार्यरत बाल श्रमिकों के कल्याण में संलग्न है। स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा बाल श्रमिक कल्याण परियोजनाओं को अपनाने पर यह सैल उन्हें वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। ये परियोजनाएं कार्य स्थल पर बाल

श्रमिकों के स्वास्थ्य की देखरेख, उनके पूरक पोषण, अनौपचारिक शिक्षण और व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है।

यह सच है और सरकार भी इसे मानती है कि बाल श्रमिकों के हितों के लिए ज्यादा काम स्वयंसेवी संस्थाओं ने ही किया है। बाल श्रमिकों के कल्याण से संबंधित कई परियोजनाओं एवं सर्वेक्षण कार्यक्रमों को वर्ष 1985-86, 1986-87, 1987-88 एवं 1988-89 में वित्तीय सहायता प्रदान की गई।

1979 में श्री एम. एस. गुरुपद स्वामी की अध्यक्षता में एक कमेटी ने बाल श्रमिकों पर एक सर्वेक्षण किया था और इसने जो निष्कर्ष निकाला था, वह अति भयावह है। कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार, "बच्चों के संदर्भ में श्रम तब एक बुराई का रूप धारण कर लेता है जब नियोक्ताओं द्वारा बच्चों से उनकी शारीरिक क्षमता के विपरीत काम लिया जाता है, जब उनके काम के घण्टे निश्चित न हों और उनकी शिक्षा, मनोरंजन तथा आराम का ख्याल न रखा जाता हो और जब उन्हें ऐसे काम पर लगाया जाता हो जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद हो या शरीर के लिए खतरनाक हो।" कमेटी के अनुसार देश के हर हिस्से में बाल श्रमिकों की स्थिति एक जैसी ही है। सभी कानूनों को ताक पर रखकर बाल मजदूरों से काम लिया जाता है और शारीरिक, आर्थिक व मानसिक रूप से उनका शोषण किया जाता है। 1986 में बाल श्रमिक अधिनियम बनाकर 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर पूर्णतया पाबन्दी लगाई गयी थी, लेकिन हकीकत यह है कि छोटे कल-कारखाने ही नहीं, लघु उद्योग भी इन्हीं बाल कलाकारों के बल पर चलते हैं। शिवकाशी के माचिस और आतिशबाजी उद्योग में, मिर्जापुर और श्रीनगर के कालीन व्यवसाय में, फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग में, मुरादाबाद के बर्तन उद्योग में, तमिलनाडु तथा केरल के बीड़ी कारखानों में, मद्रास, कन्याकुमारी तथा कलकत्ता के मत्स्य उद्योग में, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के हथकरघा उद्योग में, असम के चाय बागानों और चाय कारखानों में बाल श्रमिकों का ही बाहुल्य है और इन उद्योगों और व्यवसायो में बाल श्रमिकों का जिस तरह शोषण हो रहा है, उसे अमानवीय ही कहा जायेगा।

बाल श्रमिकों की संख्या के हिसाब से सबसे अधिक शोषण शिवकाशी के माचिस और आतिशबाजी उद्योग में किया जाता है। वहां 50,000 से अधिक बच्चे काम करते हैं, जो सुबह सात बजे से लेकर शाम को छह-सात बजे तक काम में लगे रहते हैं। इन बच्चों को नाश्ते में पाव रोटी के दो टुकड़े और एक कप चाय दी जाती है। इन्हें मजदूरी रोजाना की तीन रुपये से पांच रुपये तक दी जाती है। आतिशबाजी बनाने वाली फैक्ट्रियों में जहां गंधक और बारुद का प्रयोग होता है, ये बच्चे बिना किसी सुरक्षा के काम करते हैं। खतरनाक रासायनिक पदार्थ से काम करने के लिए भी बच्चों की ही नियुक्ति की जाती है। किसी तरह घायल हो जाने पर इन्हें मेडिकल सहायता भी नहीं दी जाती बल्कि उन दिनों काम पर न आने के कारण इन्हें पैसे भी नहीं मिलते। शिवकाशी में कुल श्रम शक्ति का 45 प्रतिशत बाल श्रमिक ही है और इनमें हजारों बच्चे ऐसे हैं जिनकी उम्र पांच वर्ष से भी कम है।

इसी तरह मिर्जापुर और श्रीनगर के कालीन उद्योग में करीब दो लाख बच्चे कार्यरत हैं जिन्हें, 16-17 घण्टे काम करने के बाद 5 से 7 रुपये रोज प्राप्त होते हैं परन्तु पगार की स्थिति इससे भी भयावह चाय बागानों में है, जहां बाल श्रमिकों को 50 रुपये माहवार से कम तनख्वाह दी जाती है और इनमें से 65 प्रतिशत बच्चों को कोई साप्ताहिक अवकाश भी नहीं मिलता। मेघालय के निजी खदानों में 30 हजार बच्चे काम करते हैं और इनमें लड़कियों की संख्या भी कम नहीं है। केरल में क्विलोन में आठ बड़े मत्स्य प्रोसेसिंग यंत्र हैं जहां करीब 20 हजार बच्चे काम करते हैं। सुबह चार बजे से शाम सात बजे तक इन्हें काम करना पड़ता है और ज्यादातर मछली छीलने के काम पर इन्हें लगाया जाता है परन्तु इतनी कड़ी मेहनत के बाद भी इन्हें प्राप्त क्या होता है? एक किलो मछली छीलने पर 1.50 रुपये से 2 रुपये तक की मजदूरी। इसी तरह बम्बई में मत्स्य व्यापार के साथ ही अन्य काम धंधों में लगे बाल श्रमिकों की संख्या आज एक लाख से अधिक है। इनमें से अधिकतर बच्चों से शराब की भट्ठी पर काम करना, शराब की बोतलों को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना, जेब काटना, भीख मांगना जैसे कई अनैतिक और अपराधिक कार्य करवाए जाते हैं।

गरीबी के कारण त्रस्त इन बच्चों को असमय ही शारीरिक श्रम के क्षेत्र में उतरना पड़ता है, परन्तु इनकी इस मजबूरी का फायदा भी स्वार्थी और चालाक व्यापारी और उद्योगपति उठाते हैं। इस महंगाई के जमाने में भी आज इन्हें इतनी कम मजदूरी दी जाती है कि इनकी हालत बद से बदतर होती जाती है। मजबूरीवश ये बच्चे इन काम धन्धों में फंसे पड़े हैं। किस भयानक रूप में इनका आर्थिक शोषण होता है, इसका अनुमान कुछ अन्य उद्योगों को दी जाने वाली मजदूरी से भी लगाया जा सकता है। महाराष्ट्र और तमिलनाडु में काजू प्रोसेसिंग और गुड़ बनाने वाले कारखानों में बाल श्रमिकों को प्रतिदिन एक रुपया से पांच रुपये तक मजदूरी दी जाती है, जबकि लकड़ी के सामान बनाने वालों को रोजाना 2 रुपये से 30-40 रुपये तक, कपड़ा मिलों में 2 रुपये से 5 रुपये तक और रसायन कारखानों में एक रुपये से दो रुपये

तक। ठीक यही स्थिति देश के अन्य उद्योगों में भी है। इतनी कम मजदूरी देने के बाद भी न तो इन्हें कोई मेडिकल सहायता दी जाती है न ही अवकाश के दिनों में मजदूरी। यहां तक कि कानून का उल्लंघन करके कई खतरनाक कामों पर भी इन्हें लगा दिया जाता है। इसी तरह 17 वर्ष से कम आयु वालों को रात्रि की पाली में काम देना गैर कानूनी है, लेकिन इसकी चिन्ता कोई नियोक्ता नहीं करता।

कुछ साल पहले उत्तर प्रदेश में फिरोजाबाद में कांच का सामान बनाने वाले एक कारखाने का दौरा करने पर मुझे यह देख कर बड़ा आघात लगा कि बच्चों को ऐसे कामों में लगाया जाता है जिनमें उन्हें भीषण ताप सहना पड़ता है। भट्टियों की आंच झेलने के अलावा इन बच्चों को आधा पिघला गर्म शीशा उठाकर ले जाना पड़ता है। यह काम बेहद जोखिम का है जरा-सी असावधानी से शरीर जल सकता है।

यहीं नहीं राजधानी दिल्ली में वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में इस्पात के बर्तन बनाने वाले कारखानों के मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन करते समय मुझे जोखिम भरे काम करने वाले बच्चों का पता चला। यहां कई बाल मजदूर कारखानों से शाम को लौटते समय सिर से लेकर पांवों तक भट्टी की काली धूल से सने रहते हैं, कुछ बच्चे तो रात को भी यही काम करते हैं। उनके कपड़े, चेहरा, नाक और यहां तक की समूचा शरीर काली धूल से भरा रहता है। इस बात का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि एक आध साल तक इस तरह का काम करते रहने से बाल मजदूरों के स्वास्थ्य पर कितना बुरा असर पड़ता होगा। इन बाल मजदूरों में कुछ तो चौदह वर्ष या इससे भी कम उम्र के होते हैं। इनको इस्पात चमकाने या ऐसे ही अन्य कामों में लगाया जाता है। इस तरह के काम में भट्टी से निकलने वाली कार्बन की धूल बच्चों के स्वास्थ्य के लिए काफी नुकसानदेह होती है।

इस तरह का कार्य वजीरपुर औद्योगिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। यह कई अन्य लघु उद्योग इकाइयों में भी होता है। ये इकाइयां आमतौर पर झुग्गी झोपड़ी वाले इलाकों में स्थित हैं। उदाहरण के तौर पर दिल्ली की जहांगीर पुरी के "के" ब्लाक में मैंने कई ऐसी वर्कशाप देखीं जिनमें इस्पात चमकाने का काम बच्चों द्वारा किया जाता है।

बाल श्रम का एक बड़ा कारण बेरोजगारी है। योजना आयोग के अनुसार देश में करीब डेढ़ करोड़ लोग बेरोजगार हैं। असल में मूलभूत विकास की गति काफी धीमी होने के कारण रोजगार के अवसर ज्यादा नहीं बढ़ पाये। पहले से चले आ रहे असंतुलित भूमि विकास और शहरों में औद्योगिक विकास के कारण गांवों से शहरों में पलायन हुआ और वहां रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने के लिए बड़ों के साथ-साथ बच्चों को भी काम पर जाना पड़ा है। कई परिवारों में तो बड़ों के मुकाबले बच्चों के रोजगार दिन ज्यादा होते हैं। कारण बच्चों को उतने ही काम के लिए कम मजदूरी पर रख लिया जाता है। इसलिए बेरोजगारी के साथ-साथ मूलभूत विकास की धीमी गति और बच्चों को कम वेतन देकर ज्यादा काम लेने की मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।

इन सबके अलावा कामगार परिवारों की "जितने हाथ उतने काम" वाली मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है। असल में बच्चों के प्रति हमारी यह मानसिकता बेहद घातक है और विकास की गति को पीछे ले जाती है। कई सम्पन्न परिवारों तक में यह मानसिकता पाई जाती है। श्रमिक परिवार की इस मानसिकता के साथ श्रमिक बच्चे के प्रति सामाजिक मानसिकता ने भी बाल श्रम को बढ़ावा ही दिया है। ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानी "पराई फांस " को पढ़कर हम थोड़ी देर के लिए विचलित भले ही हो लें, पर ढाबों, दफ्तरों में चाय इन्हीं बच्चों के हाथ से पीते हैं।

यूं तो समाज का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां बच्चों से मजदूरी न ली जाती हो पर सरकारी भाषा में हम इसे संगठित और असंगठित दो क्षेत्रों में विभाजित करते हैं। असंगठित क्षेत्र में बाल मजदूरों की पूरी फौज आती है जो घरेलू नौकर, होटल, दर्जी, जूता-पालिश, सफाई, समान उठाई-धराई, निर्माण कार्यों, खेती आदि में सहायक के रूप में काम करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के काम में बच्चा उस बड़े व्यक्ति का विकल्प है जो काम की तलाश में शहर चला गया है। संगठित क्षेत्र में ज्यादातर उद्योग आ जाते हैं। बाल श्रम समिति (1979) के अनुसार भारत में मुख्य रूप से बाल श्रम के 17 क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र इस प्रकार है- खेती, बागान, खदान एवं खनन, बीड़ी, कांच, चूड़ी, हथकरघा एवं कालीन बुनाई, जरी व कशीदाकारी, दियासलाई और पटाखा, मशीन औजार सुधारने की दुकान, पैट्रोल पंप, काजू और जूट उत्पादन, घरेलू कामगार, कैंटीन, होटल, ढाबे, दुकानें, कूड़ा बिनाई, भवन निर्माण, हॉकर, फेरीवाले, अखबार बेचने वाले, कुली आदि।

इनमें से शायद ही कोई धंधा होगा जिसमें मालिक बच्चे का शोषण न करता हो। यह शोषण कई प्रकार से किया जाता है। जैसे कम मजदूरी और अधिक काम, जोखिम भरे काम जिनका बच्चों के शरीर और मन पर बेहद खराब असर पड़ता है, असुरक्षित वातावरण और काम की प्रकृति के मुताबिक जरूरी उपकरण या

सहूलियतें मुहैया न कराना।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के मुताबिक बच्चों से सप्ताह में छह दिन और साढ़े चार घण्टे से ज्यादा काम नहीं लिया जा सकता। बाल श्रम संबंधी दूसरे नियमों के मुताबिक उनसे शाम को सात बजे से सुबह सात बजे तक काम नहीं लिया जा सकता। लेकिन इन नियमों का पालन शायद ही कहीं होता है। बच्चों से 6 से 8 घण्टे काम लेना आम बात है। कहीं कहीं यह समय 11 से 15 घण्टे तक भी हो सकता है। दियासलाई, पटाखे बनाने और कांच जैसे उद्योगों में रात को भी काम लिया जाता है। पर शोषण यही नहीं है इनसे ऐसी ऐसी जगहों पर काम लिया जाता है कि उससे बच्चों के शरीर और मन पर काफी बुरा असर पड़ता है।

बच्चों को बहुत कम जगह में एक खास तरीके से लगातार बैठकर अधिक समय तक बीड़ी बनाने से उनके फेफड़े कमजोर हो जाते हैं, कपास के रोएं और रेशों के कारण अनेक दमे का शिकार हो जाते हैं। कांच उद्योग में पिघला कांच ढोने के लिए उन्हें भट्टी के पास घंटों खड़ा रहना पड़ता है। भट्टी का तापमान 1300 डिग्री सेल्सियस होता है। एक बच्चा आठ घण्टे की पाली में कम से कम 300 बार भट्टी के पास जाता है। चूड़ी उठाते हुए खरोंचे लगना आम बात है। इससे चर्म रोग और टिटनेस का डर रहता है। पर अन्त यहीं नहीं है। बच्चों को मारना पीटना, कमरे में बंद कर देना, छड़ों से दागना, भूखा रखना, उल्टा लटका देना आदि आम बातें हैं।

औद्योगिक युग की होड़, सुख सुविधाओं की महत्वाकांक्षा और जीवन के अभाव उन्हें इतना तोड़ देते हैं कि अधिकांश नशीली दवाओं के शिकार हो जाते हैं। कभी कभी ये बच्चे तस्करों के पासे बन जाते हैं।

बाल श्रम भारतीय सामाजिक ढांचे, मानसिकता और अर्थव्यवस्था से निकली ऐसी समस्या है जिसका समाधान केवल कानून या गिनी चुनी स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयासों से नहीं हो सकता। भारतीय समाज में गरीबी इस प्रकार बैठी हुई है कि शिक्षा और स्वास्थ्य से अधिक महत्वपूर्ण पैसे को माना जा रहा है। वहां शोषण की बात कोई नहीं सोचता, वरन् रात को मिलने वाली रोटी की बात सोची जाती है। आवश्यकता है इस प्रवृत्ति पर प्रहार करने की, जन मानस को जगाने की।

72 एस.एफ.एस. फ्लेट्स
गौतम नगर, नई दिल्ली

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में 'पाठकों के विचार' नाम से एक नया स्तम्भ प्रारम्भ कर रहें हैं। इस स्तम्भ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार ढाई सौ शब्दों से अधिक में न हों और सम्पादक,कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परन्तु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तम्भ में प्रकाशित होंगे।

-सम्पादक

बाल श्रमिकों की मुक्ति की समस्या

✍ रामजी प्रसाद सिंह

किसी भी देश का भविष्य उसके बच्चों के विकास पर निर्भर करता है। इस बात को ध्यान में रखकर हमारे संविधान निर्माताओं ने सरकार को यह निर्देश दिया था कि दस साल के अंदर यानी सन् 1960 तक 14 वर्ष तक के सभी बच्चों की अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा का प्रबंध किया जाए। सुकुमार बच्चों की सेवाओं का दुरुपयोग रोका जाए। उन्हें स्वस्थ विकास की सुविधा दी जाए। सरकार को यह भी निर्देश दिया गया था कि बच्चों का शोषण बंद किया जाए। किंतु धन का अभाव और अपर्याप्त जनजागृति के कारण इन लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी।

ताजे आंकड़ों के अनुसार अभी भी 58 प्रतिशत बच्चे निरक्षर हैं और कम से कम ग्यारह करोड़ बच्चों को पेट के लाले पड़े हैं क्योंकि उनके अभिभावक गरीबी की रेखा के नीचे नारकीय जीवन-यापन कर रहे हैं। इनमें लाखों को पेट भरने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ रहा है।

उद्योगपतियों को बाल श्रमिक सस्ते पड़ते हैं। उन्हें मजदूरी कम दी जाती है और उनसे काम अधिक लिया जाता है। कुछ ऐसे उद्योगों में भी बच्चे भारी संख्या में काम कर रहे हैं जहां से वे जीवन भर के लिए अशक्त व रोगी होकर निकलते हैं।

बच्चों की दुर्दशा को दूर करने के लिए कुछ कार्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद शुरू कर दिए गए थे। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की जयंती प्रत्येक वर्ष बाल-दिवस के रूप में मनाई जाने लगी। बच्चों के बहुमुखी विकास के लिए राजधानी में भारतीय बाल विकास परिषद् की स्थापना की गई। राज्यों में भी इसकी इकाइयां राज्यपाल की अध्यक्षता में बनाई गई।

बाल-दिवस के उपलक्ष्य में, हर साल बाल-विकास की किसी विशेष समस्या के समाधान के लिए, कोई न कोई कार्यक्रम घोषित किया गया और उस पर अमल हुआ। विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्तराष्ट्र बाल आपात् कोष (यूनिसेफ) तथा यूनेस्को आदि से भी इसमें काफी सहायता मिली।

इसके फलस्वरूप प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में प्राय: सभी प्रखण्डों में मातृ-शिशु सेवा केन्द्रों की स्थापना की गई। इसके माध्यम से बच्चों को नाना प्रकार के रोगों से बचाने के लिए टीके लगाए गए। छात्रों को विद्यालयों में आकर्षित करने के लिए प्रत्येक गांव में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की गई। कई जिलों में चौदह वर्ष तक के सभी बच्चों को विद्यालय में प्रवेश दिला दिया गया। गांवों में प्राथमिक विद्यालयों का जाल बिछा दिया गया, ताकि किसी बालक-बालिका को स्कूल में पढ़ने के लिए एक किलोमीटर से अधिक दूर न जाना पड़े। लेकिन गरीबी और अज्ञानता के कारण अधिकांश बच्चे प्राथमिक विद्यालयों में भी नहीं पहुंच सके और जिन्होंने नाम लिखाया, उनमें अधिकांश प्राथमिक शिक्षा भी पूरी नहीं कर सके। उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। स्वभावत: उन्हें अपनी जीविका कमाने के लिए कच्ची उम्र में काम करना पड़ा।

सरकार को यह अच्छी तरह ज्ञात था कि कच्ची उम्र के बच्चों का शोषण हो रहा है। उनसे उनकी क्षमता से अधिक काम लिया जा रहा है। इससे उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। फिर भी सरकार ने इसे रोकने के लिए कोई कड़ा कदम नहीं उठाया। जाहिर था कि बच्चे अपने पेट के लिए अथवा अपने बूढ़े बीमार मां बाप के भरण-पोषण के लिए काम करते हैं। उन्हें काम से वंचित किए जाने का अर्थ यह था कि गरीब परिवार के लोगों को भूख से मरने के लिए वाध्य किया जाना। इसलिए सरकार ने प्रारंभ में यह तय किया कि बाल श्रमिकों से काम लिया जाना यद्यपि निषिद्ध है तथापि कानूनी कार्रवाई केवल उन कारखानों के मालिकों के विरुद्ध की जाए, जो बच्चों के साथ अमानुषिक अत्याचार करते हैं, कम मजदूरी देते हैं और अधिक काम लेते हैं, प्रदूषित वातावरण या हानिकर स्थिति में काम करने के लिए बाध्य करते हैं अथवा बाल श्रमिकों के स्वास्थ्य या उनके मनोरंजन की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं देते हैं।

सरकार ने बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए बाल-विवाह पर रोक लगाई थी किन्तु पर्याप्त जनसहयोग के अभाव में यह कानून कागज पर रह गया। बाद में, सरकार ने इस कानून को कुछ कड़ा करने की कोशिश की किंतु उसे बाल-विवाह रोकने में सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार परिवार नियोजन कल्याण आंदोलन चलाकर बच्चों की जन्म दर घटाने की चेष्टा भी पूरी तरह कामयाब नहीं हुई।

गरीब तबके में परिवार कल्याण के प्रति अरुचि के कारण बच्चों और बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ती गई। गरीबों की यह आम धारणा है कि बच्चे बोझ नहीं होते, बल्कि वे बुढ़ापे की लाठी

साबित होते हैं। वे कहते हैं कि पांच बच्चे होंगे और वे एक-एक रोटी भी देंगे, तो हमारी जिंदगी कट जाएगी।

इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप है। जब तक गरीबी उन्मूलन का काम तेजी से आगे बढ़ाया नहीं जाएगा, तब तक सामाजिक व आर्थिक विकास के लक्ष्य अधूरे रहेंगे। बाल-श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाएगी।

अब सरकार ने घोषणा की है कि तीन वर्षों के अंदर देश में बच्चों से काम लेने की प्रथा समाप्त कर दी जाएगी। यह लक्ष्य सर्वथा स्तुत्य है। किंतु, इसकी प्राप्ति किंचित कठिन जान पड़ती है। देश में बुनियादी शिक्षा पद्धति के विफल होने के कारण, बाल श्रमिकों की समस्या गहन होती जा रही है क्योंकि विद्यालयों में स्वावलम्बी छात्र तैयार नहीं किए जाते।

महात्मा गांधी ने प्रारम्भ में ही यह समझ लिया था कि स्वतंत्र भारत में निरक्षरता उन्मूलन की समस्या कठिन होगी। साथ ही, प्रत्येक हाथ को काम देना भी दुस्तर होगा। इसलिए बापू ने बुनियादी शिक्षा प्रणाली की वकालत की थी। इस पद्धति के तहत हल्के-फुल्के काम के जरिये बच्चों को शिक्षा देने की व्यवस्था थी।

दुर्भाग्य से प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद, बुनियादी शिक्षा के इस कार्यक्रम को छोड़ दिया गया और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के माध्यम से इन बुनियादी समस्याओं के समाधान की चेष्टा की गई, जिसके कारण शैक्षिक असंतुलन बढ़ गया। एक वर्ग अति शिक्षित होकर आज दुनिया् के शिक्षा जगत् में अपना वर्चस्व कायम कर रहा है और दूसरा वर्ग अशिक्षा व गरीबी की पराकाष्ठा पर दम तोड़ रहा है। आज भी वह वहीं पर है, जहां वह स्वतंत्रता प्राप्ति के समय था।

ऐसी बात नहीं कि देश का शासक वर्ग इस स्थिति से अनभिज्ञ रहा। शिक्षा पद्धति में सुधार लाने के लिए अनेक आयोगों की स्थापना की गयी। राष्ट्रीय स्तर की अनेक शैक्षिक संस्थाएं बनायी गईं। शैक्षिक प्रचार में जनसंचार माध्यमों का उपयोग किया गया। शैक्षिक अनुसंधान के अनेक कार्यक्रम लागू किए गए। पाठ्य पुस्तकों में सुधार किए गए। कई प्रकार के प्रौद्योगिक विद्यालयों की स्थापना हुई। फिर भी, यह शिक्षा पद्धति जीवन से नहीं जुड़ नहीं पाई। इस पद्धति के कारण शिक्षित बेरोजगारों का सैलाब बढ़ता गया। इसके फलस्वरूप न केवल बाल श्रमिकों का, बल्कि युवा-श्रमिकों का भी शोषण बढ़ता गया। साथ ही, युवकों में अशांति, अपराध की प्रवृत्ति और निराशा बढ़ती गयी।

अतएव, आवश्यकता इस बात की है कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालकों को अनिवार्य रूप से शिक्षित किए जाने के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए समुचित कदम उठाये जाएं। इसमें पूंजीगत व्यय को घटाने के लिए पर्याप्त जन-सहयोग लिया जा सकता है और बुनियादी शिक्षा पद्धति तथा आश्रम-शिक्षा प्रणाली का अनुकरण किया जा सकता है।

दुर्भाग्य की बात है कि प्राथमिक विद्यालयों और प्राथमिक शिक्षकों की क्षमता का पूरा उपयोग नहीं हो रहा है। प्राथमिक विद्यालयों और शिक्षकों पर स्थानीय नियंत्रण न होने की वजह से, इन विद्यालयों में यथेष्ट काम नहीं हो रहा है। ग्रामीण विद्यालयों के शिक्षक, न छात्रों की भर्ती में दिलचस्पी लेते हैं न ही बीच में स्कूल छोड़ने वालों की खोज-खबर लेते हैं। कुछ राज्यों में, विशेष कर बिहार में, प्राथमिक शिक्षक नियमित रूप से स्कूल नहीं आते। कहीं-कहीं बारी-बारी से उपस्थित होते हैं या स्कूल तब पहुंचते हैं, जब कि छात्रगण, शिक्षकों की प्रतीक्षा करके घर लौट जाते हैं। इस स्थिति में सुधार के लिए जरूरी है कि प्राथमिक विद्यालयों के प्रबन्ध में अभिभावकों को भागीदार बनाया जाए।

निवारण के उपाय

यह बात निर्विवाद है कि अधिकांश लोग, गरीबी और बेरोजगारी के कारण अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाते और पेट पालने के लिए अपने सुकुमार बच्चों को मजदूरी करने के लिए भेजने को विवश होते हैं।

अतएव, जरूरी है कि गरीबी उन्मूलन की परियोजनाओं को उच्च प्राथमिकता दी जाए और नागरिकों को काम का अधिकार सुलभ करने के संविधान के नीति विषयक निदेश (अनुच्छेद-41) पर तत्परता के साथ अमल किया जाए। साथ ही, पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य पूरा किया जाए और बाल-कल्याण संबंधी कानूनों को अमल में लाने के लिए व्यापक जन-सहयोग लिया जाए।

बंधुआ बालक

कुछ इलाकों में जमीन और धन लेकर बच्चों को जीवन-भर सेवा के लिए धनी लोगों के सुपुर्द किये जाने की परिपाटी आज भी चालू है, यद्यपि इस पर 1933 में ही प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। ऐसे बच्चों को ग्रहण करने वालों और ऐसे बच्चों को बंधुआ मजदूर बनाने वाले मां-बाप को सजा देने का प्रावधान किया गया था, परन्तु सजा इतनी कम थी कि वह कानून कागज पर रह गया। 1976 की बंधुआ-मजदूर-मुक्ति योजना से आजीवन-गुलामी करने वाले लाखों परिवारों की मुक्ति हुई और

उनके पुनर्वास की व्यवस्था की गई। इस योजना पर अभी भी अमल जारी है।

सन् 1986 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने बाल श्रमिक कानून को और कड़ा तथा प्रभावशाली बनाया। इसके बाद अनेक राज्यों में बाल-श्रमिकों के कल्याण के लिए फैक्टरी कानून को अधिक से अधिक उद्योगों पर लागू किया तथा निरीक्षण-पर्यवेक्षण तंत्र को मजबूत किया। फिर भी इसका यथेष्ट लाभ नहीं मिल रहा है क्योंकि सरकार के इन कदमों का न तो स्वयं बाल-श्रमिकों ने स्वागत किया न ही उनके अभिभावकों ने। उत्तरप्रदेश सरकार ने भदोही और मिर्जापुर के कालीन कारखानों में बाल श्रमिकों के कल्याण संबंधी कानूनों को लागू करने की चेष्टा की तो मालिक-मजदूर और बाल श्रमिकों के अभिभावकों ने एकजुट होकर उसका विरोध किया। कई जगह कारखानेदार स्वयं बच्चों को काम नहीं देते। वे ठेकेदारों को अपना काम देते हैं और ठेकेदार उसमें बच्चों को लगाकर भारी दलाली कमाते हैं।

इन बातों से सिद्ध है कि बाल-श्रमिकों की समस्या का समाधान केवल श्रम मंत्रालय के प्रयासों और बाल कल्याण कानूनों के बल पर नहीं होगा। इसके लिए गरीबी हटाने का लक्ष्य शीघ्र पूरा करना होगा, पूर्ण साक्षरता प्राप्त करनी होगी, प्रत्येक वयस्क को काम की गारंटी देनी होगी, ग्रामीण-विकास की गति तेज करनी होगी, बूढ़े अपंग अभिभावकों को जीवन-यापन योग्य सहायता देनी होगी। परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रभावी, सर्वग्राहय तथा सर्वसुलभ बनाना होगा, निराश्रित बालकों की व्यावसायिक शिक्षा के लिए उत्पादन-सह-प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना करनी होगी, बाल श्रमिकों का शोषण करने वाले कारखानेदारों ठेकेदारों को सजा दिलाने के लिए विशेष अदालतों का गठन करना होगा।

निषिद्ध क्षेत्र

बीड़ी, दरी-कालीन, सीमेंट, रंगाई-छपाई-बुनाई, माचिस, अभ्रक, लोहा, साबुन, चमड़ा और चमड़ा उद्योगों में बच्चों को लगाये जाने पर 1938 में ही पाबंदी लगा दी गयी थी। किंतु आज केवल तमिलनाडु के शिवकाशी में अकेले माचिस-उद्योग में 40,000 बच्चे काम कर रहे हैं। वास्तव में, इस उद्योग में 90 प्रतिशत बच्चे ही काम करते हैं। इनमें तीन-चौथाई बच्चियां हैं। इन्हें 250 से 400 रुपये तक वेतन मिलता है, जबकि काम 10-12 घंटे लिया जाता है।

सन् 1948 के फैक्टरी कानून के अनुसार किसी भी कारखाने में 14 वर्ष तक के बच्चों से काम लिये जाने पर पाबंदी थी और नाबालिग बच्चों अर्थात 14 से 18 वर्ष तक के कामगार बच्चों का बाजाप्ता रजिस्टर रखे जाने का प्रावधान था। साथ ही, यह नियम था कि किसी भी नाबालिग बच्चे से साढ़े चार घंटे से ज्यादा काम नहीं लिया जाए। इस कानून में मजदूरों के बच्चों के कल्याण के लिए भी व्यवस्था की गयी थी। इसके अनुसार, जिस फैक्टरी में 50 से अधिक मजदूरिनें थीं, वहां एक शिशु-सेवा केन्द्र (क्रेच) चलाने की अनिवार्य शर्त थी। प्रत्येक बाल-मजदूर के मेडिकल चेक-अप का भी प्रावधान था। परन्तु इसके अनुपालन की जिम्मेदारी कारखाना-निरीक्षक पर छोड़ दी गई। नतीजा यह कानून थोथा सिद्ध हुआ। इस कानून का उल्लंघन करने वाले कारखानेदार को अधिकतम सजा का प्रावधान करना होगा, कारखानों से मुक्त कराये गये बच्चों के पुनर्वास के लिए एक कोष का निर्माण करना होगा और बंधुआ मजदूर-मुक्ति मोर्चा जैसे स्वयंसेवी संगठनों को बढ़ावा देना होगा। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ बाल आपातकोष (यूनिसेफ) का भी सहयोग मिल सकता है। वास्तव में इस वर्ष विश्व श्रम संगठन ने भारत को बाल श्रमिकों के कल्याण के लिए 25 लाख डालर की सहायता दी है।

विश्व-समुदाय ने भी बाल-श्रमिकों की मुक्ति की दिशा में उल्लेखनीय कदम उठाया है। अमरीका में सांसदों ने एक विशेष अभियान चलाया है। उसके अन्तर्गत बाल श्रमिकों की सहायता से बनायी गयी चीजों के अमरीका में आयात किए जाने पर पाबंदी लगाने की मांग की जा रही है।

एक अमरीकी सीनेटर श्री हरकिन्स ने इसी आशय का एक विधेयक पेश किया है, इसका भारत और पाकिस्तान के कालीन एवं दरी उद्योगों के निर्यात पर बड़ा ही विपरीत असर पड़ेगा।

सीनेटर हरकिन्स के विधेयक का उद्देश्य चाहे जो हो, हम भारतीयों को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के इस कलंक को धोने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। इसमें जागरूक नागरिकों और स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका निर्णायक सिद्ध होगी।

बी 2, बी-285,
जनकपुरी,
नई दिल्ली - 110 058

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या और निदान

✍ सैयद शमीम अनवर

भारत की चन्द समस्याओं में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या है। 85 करोड़ जनसंख्या वाले इस देश की लगभग 80 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। भारत को गांवों का देश भी कहा जाता है। कृषि प्रधान देश होते हुए भी लगभग 75 प्रतिशत गांव की आबादी पुराने ढंग की खेती से जुड़ी है। आधुनिक युग में गांव की दस्तकारी दम तोड़ती नजर आ रही है। बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए समुचित व्यवस्था नहीं हो रही है। इन्हीं कारणों से गांव में बेरोजगारी आम बात है। चाहे वह मजदूर हो या शिक्षित सरकारी नौकरियां सभी को मिलना मुमकिन भी नहीं है।

बेरोजगारी एक अभिशाप से कम नहीं है। गरीबी इसकी पहली पैदावार है जिससे कई प्रकार की बुराइयां जन्म लेती हैं। बेरोजगारी के कारण आदमी का महत्व परिवार एवं समाज में घट जाता है। नई पीढ़ी पर बेरोजगारी से असंतोष पैदा होता है जिसका नाजायज फायदा असामाजिक तत्व और साम्प्रदायिक शक्तियां अक्सर उठाती रहती हैं। इससे समाज की बड़ी क्षति होती है एवं देश की शांति एवं प्रगति को भी धक्का पहुंचता है। इसलिए बेरोजगारी दूर करना देश की प्रथम प्राथमिकता होनी चाहिए।

केन्द्र एवं राज्य सरकारें इस मामले में बहुत गंभीर हैं। इस दिशा में कई परियोजनाएं सरकार चला रही है जिसमें ट्राइसेम एवं जवाहर रोजगार योजनाएं कुछ लाभप्रद दिखाई दे रही हैं। लेकिन बहुत सारी परियोजनाओं की जानकारी गांव के लोगों को मिल भी नहीं पाती है। किन्तु प्रकृति कितनी दयालु है कि वह समस्याओं के साथ उसके निदान का अवसर भी प्रदान करती है। गांव की बेरोजगारी की समस्या के निदान के लिए गांव में ही अपार अवसर हैं। मुख्य रूप से कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, मुर्गीपालन एवं मधुमक्खी पालन के साथ कुटीर एवं लघु उद्योगों में रोजगार के अनेक अवसर हैं।

इन सब क्षेत्रों में कृषि का महत्व सबसे ज्यादा है। कृषि एक ऐसा क्षेत्र है, जो कई क्षेत्रों का पूरक है। पशुपालन जहां शत्-प्रतिशत कृषि पर आश्रित है वहीं कुटीर एवं लघु उद्योग को लगभग 90 प्रतिशत कच्चा माल कृषि ही देती है। इसलिए कृषि को बढ़ावा देना लाभदायक होगा। अधिक लाभ एवं रोजगार पाने के लिए नगदी खेती पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। जैसे - कपास, गन्ना, तिलहन, दलहन, मुंगफली, तम्बाकू के साथ फल एवं सब्जियां, पौध रोपण, बागवानी वगैरह। इससे कुटीर उद्योगों के विकास के लिए मार्ग भी खुल जायेंगे। कम क्षेत्रफल थोड़ी पूंजी, कम मेहनत से बागवानी के क्षेत्र जैसे- नारियल, केला, पपीता, नीबू, अमरूद, आम इत्यादि के बाग लगाने से रोजगार एवं अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

पशुपालन के क्षेत्र में जैसे डेरी फॉर्म से दूध एवं दूध से बनी वस्तुओं के उद्योग लगाए जा सकते हैं। इसी प्रकार रेशम के कीड़े पालने का काम कई तरह के रोजगार के साथ-साथ विदेशी मुद्रा अर्जन करने का एक साधन भी है। पशुपालन से दूसरा लाभ ऊर्जा की प्राप्ति भी है। मधुमक्खी पालन कम पूंजी का एक अच्छा रोजगार है।

मत्स्य पालन गांव के लिए एक लाभदायक रोजगार है। मछली पालने के साथ-साथ तालाब के मुंडेर पर बागवानी एवं सब्जी की खेती के साथ मधुमक्खी पालन एवं डेरी फार्म का काम सुविधापूर्वक चल सकता है। मखाने की खेती भी मत्स्य पालन से जुड़ा एक लाभप्रद काम है।

गांव के माहौल में कुटीर एवं लघु उद्योग के लिए उचित वातावरण है जिसमें रोजगार मिलने के काफी संभावनाएं हैं। कम पूंजी एवं थोड़े साधन से भी काम शुरू किया जा सकता है। इसके लिए प्राय: कच्चा माल गांव में ही उपलब्ध हो जाता है। इसी के साथ गांव में उचित मजदूरी पर मजदूर भी उपलब्ध हैं जिससे सस्ते उत्पादन की सुविधा है। इसलिए गांव के बेरोजगार कुटीर एवं लघु उद्योग जैसे- जूट का सामान, सूत कताई, हथकरघा पावरलूम, कालीन बुनाई, हौजरी वस्त्र निर्माण, स्वेटर बुनाई एवं कशीदाकारी, रेडीमेड गार्मेन्टस, रस्सी बुनाई, केन, लकड़ी एवं लोहे के फर्निचर छाता एवं जूता निर्माण, चर्म उद्योग और उनसे संबंधित उद्योग, अनाज प्रसाधन, जैम-जेली, पापड़, चिप्स आचार, मोरब्बा, चटनी, पेकड मिठाइयां, गुड एवं खांडसारी, पेय पदार्थ, लेमन जूस, चाकलेट, लाली पाप, आईसक्रीम, गटागट गोलियां, एवं पाचक डबल रोटी, बिस्कुट, अगरबत्ती, कागज प्लेट, पत्ता प्लेट, तार के पंखे, पशुचारा, हस्तशिल्प

शेष पृष्ठ 20 पर

भारत में निर्धनता और उसका निवारण

✍ डा0 गजेन्द्र पाल सिंह

भारतीय अर्थव्यवस्था में निर्धनता सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश की सम्पूर्ण श्रमशक्ति को विकास की मुख्यधारा से जोड़ने व अर्थव्यवस्था को आत्म-निर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाने के लिए योजनाबद्ध आर्थिक विकास की नीति को उच्च प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार किया गया। नि:संदेह भारतीय अर्थव्यवस्था आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ी है, साथ ही कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र अर्थात सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का समग्र व सन्तुलित विकास काफी हद तक संभव हो पाया है। पर देश में धन व सम्पत्ति का पूरी तरह से न्यायोचित वितरण न होने के कारण विकास का लाभ कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित रह गया है जिससे सभी प्रयासों के पश्चात आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था में विशेष, रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, निर्धनता का गहन अन्धकार छाया हुआ है। देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग घोर निर्धनता में जीवन-यापन कर रहा है। इस निर्धनता के कारण अशिक्षा, अज्ञानता, कुपोषण, शोषण, भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का ह्रास, अभाव, कुण्ठा, अपराध व अन्य सामाजिक व आर्थिक दोष व कुप्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। अत: निर्धनता निवारण की दिशा में विशेष रूप से सक्रिय होने की आवश्यकता है, अन्यथा विकास की सम्पूर्ण उपलब्धियों को निर्धनता रूपी दानव सदैव के लिए आत्मसात करता जायेगा।

निर्धनता की धारणा

सामान्य रूप से निर्धनता का अभिप्राय मानव की आधारभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य सहायता आदि की पूर्ति हेतु पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं व सेवाओं को जुटा पाने की असमर्थता से है। दूसरे शब्दों में निर्धनता का अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता। जब समाज का एक वर्ग न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहता है तो ऐसी स्थिति में उस समाज में निर्धनता विद्यमान रहती है। निर्धनता चूंकि जीवन के एक न्यूनतम आवश्यक स्तर से नीचे की स्थिति से संबंधित है, अत: विकासशील देशों व विकसित देशों में निर्धन वर्ग की आय तथा स्थिति में बहुत अधिक अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए भारत में न्यूनतम जीवन स्तर की जो कल्पना की गई है वह अमरीका जैसे देश में न्यूनतम जीवन स्तर की तुलना में अत्यन्त ही न्यून है। अत: भारत में निर्धन वर्ग की स्थिति अमरीका के निर्धन वर्ग की तुलना में अत्यन्त ही खराब व कम है। निर्धनता के माप के लिए किसी भी देश में एक न्यूनतम उपभोग के स्तर को आधार बनाया जाता है, यह न्यूनतम उपभोग स्तर जीवन-यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति निर्धन की श्रेणी में आते हैं। भारतवर्ष में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को निर्धनता रेखा या गरीबी की रेखा कहा जाता है।

निर्धनता के अनुमान

भारतीय अर्थव्यवस्था में सर्वप्रथम निर्धनता रेखा का निर्धारण 1962 में भारत सरकार द्वारा मनोनीत एक अध्ययन दल ने किया था। दल ने 1960-61 के मूल्यों पर निर्धनता रेखा 240 रुपये वार्षिक या 20 रुपये मासिक निश्चित की थी। इस धनराशि से कम उपभोग व्यय करने वाले व्यक्ति निर्धनता रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करते हैं। अध्ययन दल द्वारा निर्धारित इस मानक में थोड़ा सा परिवर्तन करके वित्त विशेषज्ञों ने विभिन्न आधारों पर 1960-61 के मूल्यों पर 180 रुपये से 200 रुपये प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग व्यय को न्यूनतम जीवन स्तर के बराबर माना। भारतीय योजना आयोग के 'प्रभावी उपभोग मांग व न्यूनतम आवश्यकता' पर कार्यकारी दल ने 1977 में 1973-74 के मूल्यों पर ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन तथा नगरीय क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपलब्धता को ध्यान में रखकर व्यय ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49.09 रुपये तथा नगरीय क्षेत्र में 56.64 रुपये मासिक व्यय को निर्धनता रेखा माना। इस कार्यकारी दल की रिपोर्ट के आधार पर हाल के वर्षों में 1984-85 के मूल्यों पर ग्रामीण क्षेत्र में 107 रुपये तथा नगरीय क्षेत्र में 122 रुपये मासिक व्यय को निर्धनता रेखा माना गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था में किस सीमा तक निर्धनता व्याप्त है इसका अध्ययन समय-समय पर विभिन्न विद्वानों, संस्थाओं व सरकार ने किया है पर इनके विचारों व अनुमानों में एकरूपता का सर्वथा अभाव है। योजना आयोग के अनुसार छठी योजना

के आधार वर्ष 1979-80 में देश में कुल 33.90 करोड़ व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे जो कुल जनसंख्या के 48.13 प्रतिशत थे।

निर्धनता रेखा के नीचे वालों की संख्या (लाख में)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1960-61	2022.1	373.6	2395.7
1965-66	1963.0	439.7	2402.7
1970-71	2071.3	395.3	2466.6
1979-80	2730.0	660.0	3390.0
1981-82	2520.0	640.0	3160.0
1984-85	2220.0	507.0	2727.0
1989-90	1686.0	422.0	2108.0

स्रोत : सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90

1984-85 में निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वालों की संख्या घटकर 27.27 करोड़ रह गई। जिससे कुल जनसंख्या में निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वालों का अनुपात 48.13 से घटकर 37.51 रह गया। तालिका के अवलोकन से यह विदित हो रहा है कि 1960-61 से लेकर 1979-80 तक देश में ग्रामीण व नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में निर्धनों की संख्या में वृद्धि होती गयी है जिसके दो प्रमुख कारण हैं। (क) पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर तीसरी पंचवर्षीय योजना व तीन वार्षिक योजनाओं में (1951-52 से 1968-69) तक निर्धनता उन्मूलन की दिशा में न तो कोई चिन्तन रहा और न ही कोई प्रयत्न किया गया। (ख) चौथी पंचवर्षीय योजना से सरकार निर्धनता निवारण की दिशा में विशेष रूप से सक्रिय हुई पर परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन का अभाव व इस दिशा में जनता का पूर्ण सहयोग व समर्थन न मिलने के कारण इस काल में जनसंख्या की तीव्र गति से वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप सरकारी प्रयत्नों के द्वारा जितने लोगों को निर्धनता रेखा से ऊपर उठाया गया कहीं उससे अधिक जनसंख्या प्रतिवर्ष निर्धनों की जमात में सम्मिलित होती चली गयी। सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 में देश में निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वालों की संख्या 21.08 करोड़ थी जो कुल जनसंख्या का 25 प्रतिशत थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देश में आज भी निर्धनता की समस्या अत्यन्त ही व्यापक है, प्रत्येक चार में से एक व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहा है।

निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम

देश में निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम का प्रारम्भिक इतिहास निराशाजनक ही है। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं व तीन एकवर्षीय योजनाओं में निर्धनता निवारण की दिशा में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। चौथी योजना में सामाजिक न्याय की भावना से जन सामान्य व निर्बल वर्ग की आर्थिक स्थिति में आवश्यक सुधार के लिए रोजगार व शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में विशेष बल दिया गया है। निम्न आय वर्गों की दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि देश में सभी निर्धन व्यक्तियों को राष्ट्रीय न्यूनतम आय अनिवार्य रूप से प्राप्त हो। इस योजना काल में निर्धनता निवारण की दिशा में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य को उच्च प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार किया गया। इस योजना में 20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमास (1960-61 के मूल्यों पर) को न्यूनतम उपभोग स्तर मानते हुए यह अनुमान लगाया गया कि "आज देश में 22 करोड़ से भी अधिक व्यक्ति निर्धनता रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं।" अत: इस योजना में सहकारिता, भूमि सुधार, कृषि व उद्योग दोनों के सम्यक विकास के लिए हरित क्रान्ति, लघु व कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन, उद्योगों में श्रमिकों की भागीदारी, न्यूनतम मजदूरी, जनसंख्या नियन्त्रण, आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण, बचत निवेश व पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन आदि कार्यक्रमों के द्वारा निर्धनता निवारण पर सीधा प्रहार किया गया।

छठी योजना में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि देश में 1977-78 में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल जनसंख्या का 48 प्रतिशत व नगरीय क्षेत्रों में 41 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। समग्र रूप से इन दिनों देश में निर्धनों की संख्या 29 करोड़ निश्चित की गई। छठी योजना में निर्धनता की परिभाषा पोषण की आवश्यकताओं के आधार पर की गयी। यह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन व नगरीय क्षेत्रों के लिए 2100 कैलोरी। कैलोरी उपभोग की आवश्यकताओं के आधार पर छठी योजना में निर्धनता रेखा की नयी परिभाषा 1979-80 की कीमतों पर की गयी। इस आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में 76 रुपये प्रति व्यक्ति मासिक व्यय व नगरीय क्षेत्र में 88 रुपये प्रति व्यक्ति के व्यय को आधार माना गया। इस प्रकार इस योजना में यह अनुमान लगाया गया कि 31.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं जो कुल जनसंख्या का 48.4 प्रतिशत है। योजनाकारों के अनुसार निर्धनता बेरोजगारी व अल्प रोजगार की समस्या का प्रतिबिम्ब है अत: इस योजना में निर्धनता निवारण के रोजगारपरक व अन्य विशिष्ट

कार्यक्रमों जैसे काम के बदले अनाज योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार प्रशिक्षण, अन्त्योदय योजना, इन्दिरा आवास योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, ग्रामीण विद्युतीकरण व 20 सूत्री कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता के आधार पर संचालित किया गया।

सातवीं योजना व निर्धनता निवारण:

सातवीं योजना में निर्धनता निवारण कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार किया गया। इस योजना में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 1984-85 के 36.9 प्रतिशत से घटकर 25 प्रतिशत करने के लक्ष्य को स्वीकार किया गया। 1984-85 में देश में 27 करोड़ 27 लाख जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रही थी, उन्हें 1989-90 में घटाकर 21 करोड़ करने के लक्ष्य को स्वीकार किया गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए छठी योजना में निर्धनता निवारण हेतु संचालित किए गये कार्यक्रमों जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, ट्राइसेम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला व बाल विकास कार्यक्रम व जवाहर रोजगार योजना को और प्रभावी व सशक्त बनाया गया, साथ ही इस योजना में नगरीय निर्धनता के निवारण हेतु बहुआयामी लाभ के कार्यक्रम संचालित किए गए। परिणामस्वरूप इस योजना में निर्धनता निवारण की दिशा में अपेक्षाकृत सफलता प्राप्त हुई । अत: इस आधार पर स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सातवीं योजना सामाजिक न्याय की भावना को चरितार्थ करने में पूरी तरह से सफल हुई है।

आठवीं योजना में भी ग्रामीण विकास व निर्धनता निवारण कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई है। आशा है कि इस योजना में भी निर्धनता निवारण की दिशा में बहुत हद तक सफलता प्राप्त होगी। देश में निर्धनता निवारण संबंधी नीति, कार्यक्रमों व उपायों की कमी नहीं है, पर आवश्यकता कार्यक्रमों, नीतियों व उपायों के प्रभावी क्रियान्वयन की है।

निर्धनता निवारण हेतु आवश्यक सुझाव

1 निर्धनता बेरोजगारी की प्रतिबिम्ब होती है। अत: गरीबी व बेरोजगारी की समस्या के निराकरण हेतु छोटे पैमाने की उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण के लिए उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए जिससे रोजगार के अवसरों के साथ ही साथ निर्धनों को सभी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं सरलता से मिल जायें।

2 निर्धनता हमारे देश में मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान है। कृषि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मूल आधार है। अत: कृषि के विकास हेतु कृषि में आधुनिकतम तकनीक का प्रयोग, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कड़ाई से अनुपालन व कृषि आधारित उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए।

3 रोजगार के अवसरों के अभाव में निर्धनों का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की तरफ हो रहे पलायन को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक रोजगार परक लघु व कुटीर उद्योगों का विकास किया जाए।

4 आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाए। बचत, निवेश व पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन देते हुए देश में धन व सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण किया जाए।

5 कृषि विकास के साथ ही पशुधन व दुग्धशाला विकास, मुर्गीपालन, बकरीपालन, मत्स्य विकास और रोजगारपरक ग्रामीण उद्योगों का विकास उच्च प्राथमिकता के आधार पर किया जाय।

6 कीमतों में वृद्धि व जनसंख्या वृद्धि पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगाया जाय अन्यथा विकास व निर्धनता निवारण संबंधी सभी प्रयास मृगतृष्णा के समान सिद्ध होंगे।

7 निर्धनता निवारण व ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ऐसे अधिकारियों व कर्मचारियों को लगाया जाए जो ग्रामीण मानसिकता से पूरी तरह परिचित होते हुए उच्च नैतिक व मानवीय मूल्यों की स्थापना व मानवता की सेवा हेतु पूरी तरह से समर्पित हों।

8 निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि निर्धनता निवारण हेतु वर्तमान में सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों, उपायों व नीतियों तथा उपर्युक्त सुझावों को सच्चे मन व प्रबल इच्छा शक्ति से देश में संचालित किए जाने की आवश्यकता है। जिस दिन देश के समस्त धनी व निर्बल शासक व शासित, जनता व उसके प्रतिनिधि, अधिकारी व कर्मचारी, कृषक मजदूर व कारीगर प्राणपण से निर्धनता निवारण हेतु संकल्प ले लेंगे तो वह दिन दूर नहीं रहेगा जब भारतीय अर्थव्यवस्था निर्धनता की समस्या से पूरी तरह मुक्त हो जाएगी।

अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
कुंवर सिंह महाविद्यालय,
बलिया (उत्तर प्रदेश)

पर्यावरण सुरक्षा में लोगों की भागीदारी

"पर्यावरण वाहिनी" की नई योजना पर्यावरण सुरक्षा की ओर सरकार का एक और कदम है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा बनाया गया यह कार्यक्रम सबसे निचले स्तर पर कार्य कर रहे लोगों को पर्यावरण, वन और वन्य जीवों के संरक्षण से जोड़ता है। योजना का पूरा व्यय केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय वहन करेगा।

पर्यावरण वाहिनियों का गठन जिला स्तर पर किया जायेगा। इनका उद्देश्य सीधी भागीदारी द्वारा लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाना है। साथ ही वनों, वन्य जीवों, प्रदूषण और पशुओं पर अत्याचार संबंधी गैर-कानूनी गतिविधियों की खबर देना, वनीकरण और पौधों की बचाव संबंधी सूचना तैयार करना और हवा, पानी तथा गाड़ियों के प्रदूषण पर नजर रखना भी इस कार्यक्रम का हिस्सा है। यह कार्यक्रम रोजगार देने की योजना नहीं है और इसकी सदस्यता मानद होगी। सदस्यों को बैठकों में भाग लेने के लिए कुछ व्यय की प्रतिपूर्ति ही की जाएगी।

सदस्य

पर्यावरण संरक्षण के लिए चुने गए प्रत्येक जिले में एक पर्यावरण वाहिनी होगी। शुरू में वाहिनी की सदस्यता 20 व्यक्तियों तक सीमित रखी जाएगी जो योजना की प्रगति और अनुभव के साथ-साथ बढ़ाई जा सकती है। छात्र, युवा व्यक्ति और गैर-सरकारी संगठन वाहिनी के सदस्य हो सकते हैं। सदस्यों का चयन, तीन सदस्यीय समिति द्वारा किया जायेगा जिसमें जिला क्लेक्टर, वन संरक्षक/संभागीय वन अधिकारी और पर्यावरण और वन मंत्रालय के क्षेत्रीय कार्यालय का मुख्य वन संरक्षक शामिल होंगे।

सदस्यों के लिए योग्यता की शर्तों में उसका 18 से 45 वर्ष के आयु वर्ग में होना और संबंद्ध जिले का निवासी होना आवश्यक है। उसे स्थानीय भाषा को पढ़ने और लिखने की योग्यता के साथ-साथ जिले के भूगोल की जानकारी होना भी आवश्यक होगा।

चुने गए सदस्यों के प्रशिक्षण का प्रबंध जिला कलेक्टरों द्वारा किया जायेगा जिसमें पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का क्षेत्रीय कार्यालय, जिला वन अधिकारी, राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और अन्य ऐसे संस्थान मदद करेंगे।

गैर-सरकारी संगठनों के लिए योग्यता की शर्तों में सोसायटी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकरण और संबंद्ध जिले में कार्यालय होना शामिल होंगे। ऐसे संगठनों को कम से कम तीन वर्षों से पर्यावरणीय जागरूकता, संरक्षण और प्रबंध के क्षेत्रों में कार्यरत होना चाहिए, साथ ही उनके पास ऐसी जागरूकता पैदा करने के लिए सुविधाएं और संसाधन भी होने चाहिए।

वाहिनी की सदस्यता आम तौर पर दो वर्षों के लिए वैध होगी। किन्तु चयन समिति द्वारा यह महसूस किए जाने पर कि सदस्य इस कार्य में पूरी रुचि नहीं ले रहा है या अपनी भूमिका सही ढंग से नहीं निभा रहा है, तो यह सदस्यता इस अवधि से पहले भी समाप्त की जा सकती है।

व्यापक विस्तार

पहले वर्ष में पहले से चुने गए 100 जिलों में यह योजना शुरू की जायेगी। इन जिलों में सदस्यों का पंजीकरण चल रहा है। विशेष जोर ऐसे जिलों पर दिया गया है जहां प्रदूषण का स्तर अधिक है और वनों की संख्या तथा जनजातीय जनसंख्या का घनत्व अन्य क्षेत्रों से अधिक है। भौगोलिक स्तर पर इन जिलों को इस तरह से बांटा गया है कि पारिस्थितिक जागरूकता का संदेश ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुंचाया जा सके। दूसरे साल से हर वर्ष 40 अन्य जिले पर्यावरण वाहिनी में जोड़े जायेंगे। इस तरह आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक देश के 260 जिलों में पर्यावरण वाहिनियां काम कर रही होंगी।

वाहिनी के सदस्यों को वनों के विनाश या पेड़ों की गैर-कानूनी कटाई, वन भूमि के अतिक्रमण, वन्य जीवों के शिकार, पशुओं पर अत्याचार, पर्यावरण को प्रदूषित करने वाली कार्रवाई, भूमि की उपजाऊ शक्ति में कमी और गैर-कानूनी खनन जैसी गतिविधियों की सूचना जिला कलेक्टर को देनी होगी। सदस्यों के अन्य कार्यों में आम जनता के बीच पर्यावरणीय जागरूकता पैदा करना और इस कार्य के प्रति लगन के व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करना शामिल होगा।

कुछ जिलों में सदस्यों को पानी की जांच का सामान उपलब्ध कराया जाएगा ताकि जगह-जगह से पानी के नमूने लेकर उसकी स्वच्छता के बारे में जिला कलेक्टर को सूचना दे सकें। गैर-

सरकारी संगठनों तथा अन्य सदस्यों से यह भी आशा की जाती है कि वे पर्यावरणीय जागरूकता कार्यक्रम के लिए अपने संसाधनों का भी प्रयोग करें।

जिला कलेक्टर को हर महीने वाहिनी की बैठक बुलानी होगी। वाहिनी के एक सदस्य को संयोजक बनाया जाएगा और यह उसका काम होगा कि वह बैठकों की सूचना जारी करे, उनमें उपस्थिति का रिकार्ड रखे तथा सरकारी अनुदान का हिसाब-किताब रखे। बैठकों में भाग लेने और अन्य कार्यों पर होने वाले व्यय के कुछ भाग की भरपाई के लिए प्रत्येक सदस्य को हर महीने 200 रुपये का अनुदान दिया जाएगा।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

पृष्ठ 15 का शेष

खिलौने, जर्दा तम्बाकू, पान मसाला, श्रृंगार सामग्रियां, बिन्दी, सुगंधित तेल, दन्त मंजन, ब्रुश झाड़ू, प्लास्टिक के छोटे साज सामान, बिजली के छोटे उपकरण, रिफिल बाल पेन, कापी बनाना, जिल्द साजी, मसाला पिसाई डिटरजेन्ट पावडर, नील, गरम मसाला की छोटे साईज में री-पेकिंग के साथ सैकड़ों अन्य उद्योग स्थापित कर सकते हैं। महिलाएं भी आसानी से इन सब कामों से जुड़ सकती हैं। इससे जहां उनकी बेरोजगारी दूर होगी वहीं गांव के एवं शहर के उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर सामान भी उपलब्ध होगा।

गांव की बेरोजगारी दूर करने के संबंध में उचित होगा कि सरकार की ओर से -

(क) कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाय।
(ख) सिलींग से प्राप्त जमीन भूमिहीनों एवं कृषक मजदूरों को उपलब्ध कराई जाए।
(ग) बंजर परती जमीनों को भी आबाद एवं उपयोगी बनाने के लिए बेरोजगारों के बीच बांट दिया जाए।
(घ) प्रखण्ड स्तर पर बेरोजगारी उन्मूलन समिति बनाई जाए।
(च) रोजगार के अवसर चयनित किए जाएं।
(छ) योजनाओं को प्रखण्ड एवं पंचायत स्तर से लागू किया जाए।
(ज) समाज सेवी संगठनों से भी मदद ली जाए।
(झ) जन-जागरण अभियान चलाया जाए।
(ट) प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।
(ठ) कृषि क्षेत्र का प्रशिक्षण दिया जाए।
(ड) कृषि एवं लघु उद्योग के लिए ''ग्रामीण औद्योगिक शेड'' की स्थापना की जाए।
(ढ) माध्यमिक स्तर की शिक्षा को रोजगारोन्मुखी बनाया जाए।
(ण) ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की भूमिका सक्रिय बनाई जाए।
(त) उद्योगों के लिए विन्डो डिलेवरी की व्यवस्था की जाए।
(थ) नये बड़े उद्योगों को गांव में स्थापना के लिए प्राथमिकता दी जाए।

गांव के बेरोजगार युवा वर्ग अपने आप में विश्वास जगाएं स्वयं अपने अंदर छिपे हुए अनुभव के मोती का प्रयोग करें, अपनी मदद आप के सिद्धान्त पर अमल करते हुए हौसले के साथ आगे बढ़ें और अपने इर्द-गिर्द रोजगार के अवसर जुटाने की कोशिश करें। सरकार की योजनाएं एवं संस्थाएं एवं पुराने व्यापारियों उद्यमियों से सम्पर्क स्थापित कर रोजगार के अवसरों का लाभ उठायें ताकि गांव की बेरोजगारी की समस्या का निदान हो सके।

नियर जामा मस्जिद,
हमदर्द गली,
अररिया-854311 (बिहार)

कहानी

हतप्रभ

✍ डा0 किरण बाला

पांच बच्चों में सरिता सबसे बड़ी थी। सुंदर और सुशील, घर-गृहस्थी के कामों में माहिर। काम चाहे रसोई का हो या सिलाई का या पढ़ाई का, सरिता दी की योग्यता ने उन्हें लोकप्रियता और सम्मान दिलवाया था। माता-पिता के लिए दुलारी बेटी थी और मुहल्ले की लड़कियों के लिए सरिता दीदी, बुजुर्गों के लिए सरिता बेटी। मुहल्ले में किसी को फ्रॉक कटवाना हो तो सरिता दी सिलाई करवानी हो या फिर स्वेटर का कोई नमूना उतरवाना हो तो सरिता दी के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

अपनी व्यस्तताओं के बीच सरिता दी ने अच्छे अंकों के साथ बी0ए0 की परीक्षा पास की और एम0ए0 करने के सपने संजोने लगी तभी उनकी शादी तय हो गयी। लड़का डाक्टर था और पिताजी ने काफी दौड़-धूप के बाद शादी तय की थी। इसलिए सरिता दी को अब अपना भविष्य दाम्पत्य सूत्र में ही नजर आने लगा। उसके पिता सिन्हा साहब ने शादी में औकात से कहीं ज्यादा खर्च किया और सरिता दी को नये घर में कोई परेशानी नहीं हुई, उन्हें पर्याप्त मान-सम्मान और प्यार मिला। उनकी व्यवहार-कुशलता ने ससुराल में उन्हें सबकी चहेती बनाया और देखते ही देखते चार साल इस तरह गुजर गये कि पता ही नहीं चला।

समय चक्र कब किधर घूमेगा, कोई नहीं जानता। सरिता दी के साथ भी समय ने गिरगिट की तरह रंग बदला और उनके पति स्कूटर दुर्घटना के अकस्मात शिकार हो गये। दायां पैर काट देना पड़ा और सिर में लगी चोट की चिकित्सा चलने लगी। लेकिन उनकी स्थिति सही मायने में संभल नहीं पा रही थी। जब यह एहसास होता कि सुधर रही है तो अगले दो दिनों में और भी अधिक खराब हो जाती और फिर भाग-दौड़ दवा दारू की बदौलत एक सप्ताह में सुधरने लगती। सुधरने और बिगड़ने का यह सिलसिला लगभग छः माह तक चलता रहा। ससुराल और मायके वालों ने यथा संभव सहायता करने मे कोई कोर-कसर नहीं रखी। लेकिन सबकी अपनी-अपनी सीमाएं थीं। पटना से दिल्ली तक कि चिकित्सा से इतने अधिक खर्च हो चुके थे कि परिवार वालों का धैर्य बिखर गया। दिल्ली से पटना आने के बाद अब किसी रिश्तेदार के लिए औपचारिकता पूरी करना भी जोखिम भरा काम लगता था। लेकिन सरिता दी का भगीरथ प्रयास जारी था। उन्हें विश्वास था कि भगवान उनकी मदद करेंगे और एक दिन विकलांग ही सही उनका पति क्लीनिक में बैठेगा और नये विश्वास और आत्मबल के साथ वे जीवन धारा में साथ-साथ तैरेंगें। इसी आस्था और विश्वास के साथ वह हिम्मत हारने के बजाए पूरी शक्ति से लड़ रही थी। इसी लड़ाई के क्रम में उन्हें अस्पताल की नर्सों, कम्पाउडरों या डाक्टरों की लापरवाही के विरुद्ध भी लड़ना पड़ता, लेकिन इसके बावजूद वह इस लड़ाई में हार गयी।

उनका संघर्ष बेमानी हो गया, आशाओं पर तुषारापात हो गया, लेकिन इससे उनकी जिम्मेदारियां घटी नहीं और भी बढ़ गयीं।

उनके दो बेटे थे, साल भर के जुड़वां और दोनों विकलांग। उनके पति कहा करते थे, जैसे जैसे उम्र बढ़ेगी, बच्चों की विकलांगता वह दूर कर देगा। अपनी पढ़ाई की असली परीक्षा वह इन बच्चों की विकलांगता दूर करके ही पास करेगा। इतना आत्मबल वाला उसका पति भी अब उनके पास नहीं था। फिर भी बच्चे थे, समस्याएं थीं और समस्याओं से टकराने में सहयोग देने के लिए आशा बंधाते परिवार और रिश्तेदारों का एक बड़ा हुजूम था। लेकिन आशा बंधाने के सिवा कोई किस हद तक साथ दे पायेगा, इसका अनुमान तो उन्हें स्वयं पति की लम्बी बीमारी में ही हो चुका था, लेकिन एक मां थी और एक बाबूजी थे, जिनपर भरोसा उसे अभी भी था। देवर, जेठ सभी लोग सिर्फ सहानुभूति रखते थे। सास-ससुर उसे कुलच्छनी की संज्ञा देने लगे थे।

श्राद्ध के बाद मां आयी थी, तो उसने रूंधे गले से यह बात बतलायी थी। मां ने उसे जल्द से जल्द अपने पैरों पर खड़े होने की सलाह दी थी। नौकरी के लिए प्रयास करना अमरबेल तक पहुंचना था, इसलिए उसने श्राद्ध के बाद, सिलाई-बुनाई करने की ठान ली। परिवार वालों को यह बात शोभनीय नहीं लगी, लेकिन कोई दायित्व सम्हालने के लिए तैयार भी नहीं था, सो प्रत्यक्ष रूप से किसी ने आपत्ति नहीं की। इससे सुविधा यह हुई कि सरिता दी अपनी और अपने बच्चों की परवरिश में सक्षम तो नहीं लेकिन संघर्ष करने योग्य हो गयी।

इस बीच घर में आपसी कलह के बीच बंटवारा हो गया।

एक कमरा और बरामदा उसके जिम्मे आया। बरामदा रसोई बनाने के काम में आने लगा। अब सभी लोग अलग-थलग थे। सास-ससुर और छोटे देवर एक साथ, दोनों जेठ अलग-अलग। बच्चों को सबसे तिरछी निगाहों से जेठ जी ही देखते थे, लेकिन जब से जेठानी जी मायके चली गयी थी, उसके बाद से ही उनके व्यवहार में परिवर्तन होने लगा था, बच्चों के प्रति नेह उमड़ आया था फलस्वरूप शाम को आफिस से वापस आने पर टाफियां लाते, उनके साथ कुछ देर खेलते भी। सरिता दी को यह अच्छा लगा था और अपने पति की बच्चों के साथ की चुहल याद आयी थी। इसी याद के साथ आंखें नम किये वह रात में सो गयी थी। नींद में उन्हें लगा पलंग पर कोई और है। आंख खुली, लाइट जलायी तो बड़े जेठ हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए।

मैंने पूछा- आप ....यहां क्या बात है? वे मुड़ गये और जाते-जाते बोले--कुछ नहीं बबलू को देखने का मन हो आया था। वे तेज़ी से निकल गये। सरिता दी ने ध्यान दिया तो उसे अहसास हुआ, गलती उसी की है, उसे दरवाजा खुला नहीं छोड़ना चाहिए था। दरअसल सोते समय अपने पति के अतीत में इतना खो गयी थी कि सोने से पहले दरवाजा बंद करने का ध्यान ही नहीं रहा।

लेकिन अब उसकी आंख लग नहीं रही थी। उसे बार-बार लग रहा था कि यह जगह अब उसके लिए निरापद नहीं रही। सुबह होते ही उसने बच्चों को तैयार किया और मां से मिलने गयी। पिताजी ने कहा सरिता एक खुशखबरी है - मुन्नी की शादी बैंक वाले लड़के से ठीक हो गयी है।

मुन्नी उससे लिपट गयी और अपनी खुशी का इजहार करने लगी। उसे अपने कमरे में हाथ पकड़कर ले गयी। वापसी के समय उसने बाबूजी से कहा- "मैं सोचती हूं मुन्नी की शादी के बाद यहीं आकर रहूं, वहां मन नहीं लगता है, यहां आकर मन से काम करूंगी तो आमदनी भी अच्छी होगी, अब तो बच्चों की पढ़ाई के लिए भी पैसे जमा करना जरूरी है।'

"सो तो ठीक ही कह रही हो। कुछ तो सोचना ही चाहिए" बाबूजी ने कहा, लेकिन मां ने कहा-"यह तो ठीक है, इसका घर है, इसे रोकेगा कौन, लेकिन यहां आने के बाद जो कमरा वहां तुम्हे मिला है, वो भी देवर जेठ हथिया लेंगे। हम जब तक जिंदा हैं तुम्हें यहां रहने में परेशानी नहीं है, लेकिन हम लोगों के बाद तुम्हारा भाई कैसा निकलेगा कौन जानता है। अगर बुरा हुआ तो इस घर में टिकने देगा क्या? और उसके बाद तुम्हारे पास वो कमरा भी नहीं रहेगा। फिर कहां जाओगी छोटे-छोटे बच्चों को लेकर। बच्चे ठीक होते, तन्दरुस्त होते तो बड़े होकर दखल कर लेते, लेकिन इन लंगड़ों लूल्हों को कौन टिकने देगा। मैं तो कहूंगी लाख कष्ट हो, ससुराल मत छोड़ना अब आगे जैसी तुम्हारी मर्जी।"

मां को कुछ समझा नहीं सकी थी। वापस चलने को हुई तो मुन्नी ने कहा- शादी में जरूर आना। उसने कहा- यह भी कोई कहने की बात है- मुनिया की शादी और दीदी नहीं आये। असंभव। मां ने चलते समय कुछ कहा नहीं। वापस आने पर शादी की नजदीक आती तारीख बार-बार उसके दिमाग में टकरा रही थी। कैसे क्या इंतजाम करेगी। मुन्नी को क्या देगी, बच्चों के कपड़े वगैरह वगैरह।

वापसी के बाद उसने ध्यान दिया दो बातों पर। एक तो भूलकर भी दरवाजा खुला नहीं छोड़ना और दूसरी पैसों को जोगाकर रखना। इसमें वह सफल भी हुई। शादी के दिन तक जितना भी जुगाड़ हो पाया उससे मुनिया की शादी में एक साड़ी खरीद कर मायके पहुंच गयी।

दरवाजे पर काफी चहल-पहल थी, ठीक उसकी शादी की तरह। घर में पैर रखते ही मामी पर नजर पड़ी। उन्हें प्रणाम कर मुन्नी के पास गयी। वह अपनी सहेलियों से घिरी बैठी थी। मां दूसरे कमरे में थी, उसने खुली खिड़की से मां को प्रणाम किया। मां कुछ जवाब देती उससे पहले ही मामी वहां पहुंच गयी थी और तमतमाये चेहरे के साथ बोल रही थी। "तुम्हारी लाडली को शादी में बुलाना जरूरी था क्या? शादी के चार साल बीते नहीं कि पति को खा गयी। बच्चों को लंगड़ा लूल्हा बना दिया। कितनी डरावनी हो गयी है? डायन जैसी लगती है। इससे अपनी बहन की खुशी भी नहीं देखी जाती कि पहुंच गयी रंग में भंग करने। अरे मैं पूछती हूं इस विधवा को शुभ मूहूर्त में शामिल करने का दिमाग तुम्हें किसने दिया? अगर कल कुछ हो गया तो क्या करोगी।" तो मैं क्या करुं? कहां बुलाया था मैंने? निमंत्रण पत्र इसलिए तो नहीं भेजा था। फिर भी चली आयी तो क्या करूं? क्या कहूं उससे" मां ने झन्नाकर कहा था।

"क्या कहोगी? कह नहीं सकती कि चाहे तो वापस चली जाओ या लड़की बिदाई तक अंधेरे कोने में मुंह छिपाये बैठी रहो, बेटी की भले के लिए इतना भी नहीं कर सकती?"

सरिता ने सारी बातें सुनी थीं और क्या करूं, यह सोच ही रही थी कि मां सामने आ गयी, उसने कहा- "सरिता शादी तक पिछले कमरे में रहो तो क्या बुरा है?"

वह हतप्रभ थी। उसने अपने बच्चों को उठाया और बोली "जा रही हूं मां, मेरा कमरा कहीं बेदखल न हो जाये।" मां ने कुछ भी नहीं कहा और वह तेजी से निकल गयी।

पश्चिमी संसर्ग, श्यामा भवन,
जोरिंग कैनाल रोड, पटना

जल संसाधन विकास समय की तात्कालिक मांग

✍ जयसिंह रावत

पांच आधारभूत तत्वों, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश में से जल एक है, जिससे जीवन की उत्पत्ति हुई है। जल प्रकृति का वरदान है इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। जल की आवश्यकता न केवल पीने के पानी के रूप में बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में होती है।

हम भाग्यवान हैं कि हमारे देश में इस मूल्यवान जल संपदा का अपार भंडार है। वर्षा तथा हिम से ढकी हुई पर्वतीय चोटियों से निकलने वाला जल नदियों में बहकर न केवल पेयजल व सिंचाई की आवश्यकता की पूर्ति करता है, उसका उपयोग विद्युत उत्पादन, औद्योगीकरण आदि में भी होता है। वर्षा का जल भूमि में रिसकर भूगर्भीय जलाश्य बनाता है जिसका उपयोग कुएं व नलकूपों आदि के माध्यम से सिंचाई व अन्य कार्यों के लिए किया जाता है। जल संसाधन विकास के लिए सुनियोजित रूप से कार्यवाही आवश्यक है यद्यपि जल संसाधन विकास कार्य राज्य स्तर पर कराये जाते हैं, जल के विभिन्न प्रकार के उपयोगों को दृष्टिगत करते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि जनसाधारण को जल संग्रह, जल संरक्षण और जल के उपयोग संबंधी मूलभूत बातों की जानकारी दी जाय तथा जल बचाने के बारे में जागरूकता पैदा की जाए।

यदि नागरिकों में जल को व्यर्थ नष्ट न करने एवं दूषित होने से बचाने की प्रेरणा नहीं आई तो आने वाले समय में जल संसाधन की कमी का सामना पूरे देश को करना पड़ सकता है। जनता में जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से अप्रैल 1987 में सर्वप्रथम जल संसाधन दिवस का आयोजन केन्द्रीय सरकार के आह्वान पर किया गया था। लेकिन ऐसे औपचारिक जलसों से काम चलने वाला नहीं है। इसमें जनता की सक्रिय भागीदारी जरूरी है।

सिंचाई साधनों के समुचित विकास द्वारा सूखे से प्रभावित क्षेत्र को कुछ हद तक बचाया जा सकता है। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश का पश्चिमी क्षेत्र इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। विगत शताब्दियों से ये क्षेत्र वर्षा पर ही निर्भर थे। इन क्षेत्रों में बार बार अकाल पड़ता था। यहां प्राय: राजस्थान जैसी ही स्थिति थी। इस क्षेत्र में भाखड़ा, सतलुज नहर, गंगा नहर व यमुना नहर के निर्माण के फलस्वरूप यह क्षेत्र देश का महत्वपूर्ण कृषि उत्पादन क्षेत्र बन गया है। राजस्थान में गंगा नहर और इन्दिरा गांधी नहर के निर्माण के फलस्वरूप अब रेगिस्तान की बंजर भूमि भी कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है।

एक अनुमान के अनुसार लगभग 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर जल वर्षा के रूप में प्रति वर्ष देश में गिरता है, इसमें से लगभग 17.8 करोड़ घन मीटर जल नदियों आदि में प्रवाहित होता है। विभिन्न प्राकृतिक कारणों से इसमें से लगभग 8 करोड़ घन मीटर जल विभिन्न प्रकार के उपयोगों में लाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 4.2 करोड़ हेक्टेयर मीटर भूगर्भीय जल के उपयोग से लगभग 11.3 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचन क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। इसमें से लगभग 5.8 करोड़ हेक्टेयर भूमि वृहत्त एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा और साढ़े पांच हेक्टेयर मीटर लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा सिंचित हो सकती है, इनमें नलकूप भी शामिल हैं।

विषमता यह है कि यह जल संपदा पूरे देश में बराबर बंटी हुई नहीं है। देश के भौगोलिक क्षेत्र 32.8 करोड़ हेक्टेयर का लगभग एक तिहाई भाग प्रति वर्ष भयंकर सूखे की चपेट में आता है। दूसरी ओर लगभग 10 प्रतिशत क्षेत्र भारी बाढ़ की विभीषिका से ग्रस्त होता है। इसी प्रकार कुछ नदी घाटियों में पानी की अधिकता है तो दूसरों में जल की कमी है। देश के जल संसाधनों का लगभग 80 प्रतिशत अन्तर्राज्यीय नदियों में बहता है। अत: यह आवश्यक है कि जल संसाधनों का विकास राज्य की सीमाओं को न मानते हुए पूरी नदी घाटी के विकास के उद्देश्य से किया जाये।

देश की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस समय देश की जनसंख्या 87 करोड़ से ज्यादा होने का अनुमान है, जबकि खाद्य उत्पादन लगभग 18 करोड़ टन प्रतिवर्ष है जो वर्तमान जनसंख्या के लिए पर्याप्त है। अनुमान है कि शताब्दी के अंत तक जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न की आवश्यकता 24 करोड़ टन प्रतिवर्ष हो जायेगी।

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए सिंचन सुविधाओं का विकास अत्यंत आवश्यक है। यदि जल संसाधन के सुनियोजित विकास व नई सिंचाई परियोजना के निर्माण कार्यक्रम पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया तो हमारे नगरों व ग्रामों में पेयजल की समस्या तो हो ही जायेगी देश में पर्याप्त खाद्यान्न भी उपलब्ध नहीं होगा। जल

संसाधन विकास की ही नहीं, जल संरक्षण की भी उतनी ही आवश्यकता है, ताकि मूल्यवान जल संपदा व्यर्थ में नष्ट न हो, जल की गुणवत्ता बनाये रखने की ओर भी समुचित ध्यान देना होगा अन्यथा दूषित जल के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। पर्यावरण सुधार के साथ-साथ जल प्रदूषण की भी रोकथाम करनी होगी। औद्योगीकरण से नदियों में आने वाली गंदगी आदि की सफाई के लिए भी प्रयास करने होंगे।

अनुमान लगाया गया है कि देश में नदियों के जल से विद्युत उत्पादन की क्षमता लगभग 47.214 करोड़ यूनिट प्रतिवर्ष है। अब तक केवल 4,867 यूनिट विद्युत क्षमता का सृजन ही किया जा सका है। देश के बहुमुखी विकास व औद्योगिकीकरण के लिए इस जल विद्युत क्षमता का पूरा लाभ उठाया जाना आवश्यक है।

इस समय हमारे देश में प्रति व्यक्ति उपयोग की जाने वाली विद्युत लगभग 157 यूनिट प्रति व्यक्ति है, जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में यह 10638 यूनिट, रूस में 4486 यूनिट, पश्चिमी जर्मनी में 5851 यूनिट और कनाडा में 7907 यूनिट प्रति व्यक्ति है।

गत वर्षों में जल विद्युत के स्थान पर तापीय विद्युत उत्पादन को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। कुल विद्युत उत्पादन क्षमता का लगभग 34 प्रतिशत ही जल विद्युत है। देश में कोयले व तेल के भंडार सीमित हैं जबकि जल सम्पदा का भण्डार अपार है और कभी न समाप्त होने वाला है। गंगा और यमुना नदी घाटियों में लगभग 11000 मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता है। अब तक 709 मेगावाट क्षमता के विद्युत गृहों का निर्माण हो चुका है तथा 4022 मेगावाट विद्युत क्षमता के लिए परियोजनाएं निर्माणाधीन है।

नदी घाटी परियोजनाओं के निर्माण के फलस्वरूप क्षेत्र के पर्यावरण पर कुछ असर अवश्य पड़ता है। विशेष तौर पर पर्वतों में स्थित परियोजनाओं से निर्माण कार्यों के लिए व डूब क्षेत्र में कुल वन भूमि प्रभावित होती है तथा वृक्ष काटने पड़ते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसी वन भूमि के बदले में बंजर भूमि का अधिग्रहण कर उसमें वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाया जाये तथा उस भूमि को आरक्षित वन घोषित किया जाये। नदियों के जलग्रहण क्षेत्र में सुरक्षात्मक कार्यों जैसे भूमि संरक्षण, वृक्षारोपण व चेक डैम आदि के निर्माण से भूमि का कटान रुकेगा तथा जलाशय में आने वाली मिट्टी सिल्ट आदि के काम आयेगी और नदियों में बाढ़ का प्रभाव भी कम होगा। यह भी आवश्यक है कि परियोजनाओं के निर्माण से प्रभावित विस्थापितों के पुनर्वास के लिए पूरी सुविधाएं प्रदान की जायें ताकि उनका आर्थिक स्तर ऊंचा हो सके।

नहरों में प्रवाहित होने वाले जल का उपयोग अधिक से अधिक भूमि में सिंचाई का लाभ उपलब्ध कराने तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए करना अत्यंत आवश्यक है। नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में यह आवश्यक है कि जल के मितव्ययतापूर्ण उपयोग के लिए भूमि को समतल किया जाए तथा जल निस्तारणी नालों का निर्माण किया जाये। जल वितरण व उत्तम प्रबंध के लिए कृषकों के समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। कृषकों के सहयोग से जल के उपयोग में मितव्ययता लाई जा सकेगी तथा जल की एक-एक बूंद का उपयोग अधिक कृषि उत्पादन के लिए किया जा सकेगा।

आज हमारे देश के विकास व भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए जल संसाधनों का सुनियोजित विकास एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह कार्य केवल राजकीय विभागों व संस्थानों द्वारा नहीं किया जा सकता। जनता का पूर्ण सहयोग जल संसाधनों के विकास, संरक्षण व वितरण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

147, एम.डी.डी.ए कालोनी
डालनवाला देहरादून (उ.प्र.)

लेखकों से अनुरोध

''कुरुक्षेत्र'' के लिए मौलिक लेख, लघु तथा व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचनाओं के प्रकाशन के संबंध में पत्र-व्यवहार न करें। सभी रचनाएं सम्पादक,कुरुक्षेत्र, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली 110001 के पते पर भेजें।

ऊर्जा संरक्षण में बैंकों की भूमिका

✍ इन्दु शेखर व्यास

मानव ने अपनी उत्पत्ति के साथ ही ऊर्जा के महत्व को समझ लिया था। इसलिए उसने अपने प्रारम्भिक काल से ही ऊर्जा के उत्पादन, उसके समुचित उपयोग तथा संरक्षण के संबंध में जानकारी प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। सर्वप्रथम उसने आग जलाना सीखा और उसके उपयोग के संबंध में ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् उसने इसे उत्पन्न-अर्जित कर सकने वाले पदार्थों के संबंध में विस्तृत जानकारी अर्जित की। कालान्तर में लकड़ी कोयला इत्यादि पदार्थ मनुष्य के लिए ऊर्जा के परम्परागत स्रोत बन गये।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती रही तथा प्रकृति में उपलब्ध ऊर्जा-स्रोतों का उपयोग होता रहा। जनसंख्या में वृद्धि, बढ़ते औद्योगीकरण तथा अधिकाधिक सुविधाएं जुटाने के मानवीय प्रयासों में ऊर्जा के स्रोतों का दोहन दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। इस कारण आज स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि ये स्रोत समाप्त होने लगे हैं। यही नहीं, इनकी कमी से प्राकृतिक सन्तुलन पर गहरा असर पड़ा है जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज सबसे बड़ी समस्या के रूप में हमारे समक्ष आ खड़ी हुई है।

पिछले कुछ वर्षों से पूरे विश्व का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। हमारे देश की सरकार भी ऊर्जा के अन्य स्रोतों के विकास के लिए प्रयास कर रही है ताकि विकास की गति को बनाए रखा जा सके तथा प्रदूषण की समस्या को कम किया जा सके। इसके लिए सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, बायोगैस इत्यादि के उपयोग के संबंध में विशेष अनुसंधान किये जा रहे हैं। घरेलू उपयोग के लिए इनके माध्यम से ईंधन उपलब्ध कराने के प्रयास जारी हैं। हमारे देश की वित्तीय संस्थाएं व बैंक भी बायोगैस तथा सौर ऊर्जा द्वारा संचालित संयंत्रों को खरीदने के लिए ऋण उपलब्ध करा रहे हैं। सभी वाणिज्यिक बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं द्वारा इस हेतु ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

बायोगैस संयंत्र

जिस किसी व्यक्ति अथवा परिवार के पास तीन-चार अथवा अधिक पालतु पशु जैसे, गाय, भैंस, बैल इत्यादि उपलब्ध हैं उनके लिए यह संयंत्र सर्वाधिक उपयोगी हैं। उनके घर की ईंधन की आपूर्ति इसके माध्यम से सरलता से हो सकती है। इस संयंत्र में पशुओं के अपशिष्ट तथा पेड़-पौधों के पत्तों का उपयोग होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसका उपयोग और अधिक है क्योंकि पशुओं तथा स्थान की उपलब्धता वहां अधिक होती है। पशुओं के अपशिष्ट का उपयोग पुनः खाद के रूप में भी किया जा सकता है। यह खाद भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। इस प्रकार बायोगैस संयंत्र से लाभ ही लाभ हैं। बैंकों द्वारा इस संयंत्र पर ऋण उपलब्ध कराया जाता है। मुख्य रूप से तीन प्रकार के संयंत्रों के.वी.आई.सी., दीनबन्धु तथा जनता मॉडल के लिए ऋण का प्रावधान है। वर्तमान में इन संयंत्रों की इकाई लागत इस प्रकार है-

		लागत रुपयों में		
क्र.	क्षमता	के वी आई सी	जनता	दीनबन्धु
1.	2 घन मीटर	8000/-	4600/-	5100/-
2.	3 घन मीटर	10400/-	6000/-	6100/-
3.	4 घन मीटर	12200/-	7400/-	7900/-
4.	6 घन मीटर	17000/-	8900/-	10100/-
5.	8 घन मीटर	20800/-	-	-
6.	10 घन मीटर	24300/-	-	-

जिला ग्रामीण अधिकरण के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे चयनित परिवारों को नियमानुसार अनुदान भी उलब्ध कराया जाता है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के परिवारों के लिए अनुदान की विशेष व्यवस्था है। योग्य विशेषज्ञों की देख रेख में इनका निर्माण कराया जाता है जिससे किसी प्रकार की तकनीकी असुविधा न हो।

सोलर कूकर

यह संयंत्र खाना पकाने के काम आता है। इसके माध्यम से बिना कुछ ईंधन खर्च किए सूर्य के प्रकाश को क्रेंद्रित कर ऊर्जा प्राप्त की जाती है जिसका उपयोग खाना पकाने में होता है। इससे समय तथा श्रम की बचत भी होती है। इस उप्रकरण पर भी बैंकों द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाता है। लक्ष्य समूह के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों को आवश्यक अनुदान भी उपलब्ध कराया जाता है। ऋण का पुनर्भुगतान उसे 3 से 5 वर्ष तक के लम्बे अन्तराल में आसान किश्तों में करना होता है, यदि किसी व्यक्ति ने पूर्व में किसी बैंक शाखा से ऋण ले रखा हो और उसका पुनर्भुगतान

समयानुसार कर रहा हो तो उसे सोलर कूकर के लिए दूसरा ऋण भी उपलब्ध करा दिया जाता है। जहां ईंधन की समस्या अधिक है तथा गर्मी अधिक रहती है वहां सोलर कूकर सर्वाधिक उपयुक्त उपकरण है। बैंकों को नाबार्ड द्वारा इन संयंत्रों के लिए शत प्रतिशत पुनर्वित्त की सुविधा उपलब्ध है। इसलिए वे इनके लिए तत्परता से ऋण सुलभ करा देते हैं।

आज पूरा विश्व पर्यावरण की समस्या से ग्रस्त है। हम भी इससे अछूते नहीं हैं। पर्यावरण सन्तुलन भी बना रहे और विकास का मार्ग भी अवरुद्ध न हो इसके लिए ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोतों का विकास आवश्यक है। यह हमारे अस्तित्व का प्रश्न है। इसलिए ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोतों के लिए बैंकों द्वारा उपलब्ध करायी जा रही ऋण सुविधाओं का समुचित उपयोग किया जाना चाहिए जिससे ऊर्जा की बचत हो, आर्थिक लाभ हो तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखते हुए देश के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

'रुक्मिणी मंगलम्'
432, टीचर्स कॉलोनी,
अम्बामाता स्कीम, उदयपुर
राजस्थान 313001

श्रमिक की कहानी

शैलेन्द्र कुमार मिश्र

वह कभी हलवाहा
था किसान का !
कभी बंधुवा मजदूर
था इंसान का।
कभी 'बाबू साहब' के
बना पांवों की जूती।
बोलती थी गांवों में;
जिसकी तूती!
खटा कभी दिन-दुपहर,
वर्ष-दो वर्ष, नहीं --
पूरी जिन्दगी भर!
खुद भी की बेगारी,
बच्चों को लाइन में,
लगाने की है लाचारी--
आज भी !

ग्राम-तरती, होलागढ़
जिला-इलाहाबाद।

चीतोस में जगी चेतना

✍ किशन रतनानी

साठ घरों के छोटे से चीतोस गांव में जग उठी है चेतना। स्वच्छता से जीवन यापन करने की चेष्टा। पूरा गांव जल्दी से जल्दी इस चेतना की लहर में समा जाना चाहता है जैसे।

चीतोस गांव अलवर जिले के राजगढ़ ब्लाक का एक गांव है जो राजगढ़ से लगभग पांच कि.मी. दूर बसा हुआ है। उसी गांव में रहने वाले अध्यापक गोबिंद सहाय ने मुझे पूरी जानकारी दी। इन्होंने यूनिसेफ की एक योजना के तहत 'स्वच्छता प्रेरक' का प्रशिक्षण प्राप्त किया है।

अलवर जिले में यूनिसेफ के सहयोग से राज्य सरकार एक 'स्वच्छता पैकेज' योजना चला रही है। इस योजना के तहत शौचालय, मल निकासी के लिए सोखता गड्ढा, नहाने धोने का चबूतरा तथा उन्नत चूल्हे के लिए यूनिसेफ व राज्य सरकार क्रमशः 770 व 300 रुपये का अनुदान दे रही हैं। स्वच्छता प्रेरकों को भी जो प्रशिक्षण दिया गया उसमें इस पैकेज तथा अनुदान प्राप्त करने की प्रक्रिया आदि की विस्तृत जानकारी दी गई है।

चीतोस गांव में अध्यापक श्री सहाय ने इसकी शुरुआत स्वयं से की। उन्होंने नवंबर '92 में 'स्वच्छता पैकेज' के तहत राज्य सरकार से 1070 रुपये को अनुदान प्राप्त किया।

बस शुरुआत की देर थी। शुरुआत हुई तो पूरे गांव में चर्चा चल निकली। सबको लगा कि इसमें तो हर तरह से उनको फायदा ही फायदा है क्योंकि वे लोग खुले में शौच जाते हैं और उसे मिट्टी से ढकते नहीं। इस कारण शौच की गंदगी सूखकर हवा के साथ पूरे गांव में फैलती है। बारिश में तो स्थिति और भी विकट हो जाती है। इसके अलावा मक्खियां भी फैलती हैं।

बीमारियों से निवारण का एक रास्ता जब नजर आया तो उन्होंने राह पकड़ ली। एक के बाद एक कुल 15 ऐसे शौचालय आदि तैयार हो गए गांव में। 10 अन्य घरों में इसका काम जारी है। गांव वालों की तमन्ना है कि इस वर्ष गांव में सभी घरों में ऐसे शौचालय बन जाएं।

आजकल यूनिसेफ द्वारा दो सोखता गड्ढों का शौचालय बनाया जाता है। दो गड्ढे इसलिए बनाए जाते हैं कि एक गड्ढा भर जाने पर दूसरा गड्ढा काम आता रहे। तब तक उस पहले वाले गड्ढे की सफाई कराई जा सके। एक गड्ढा लगभग तीन साल चल जाता है। सोखता गड्ढा वाला शौचालय फ्लश शौचालय से काफी अच्छा रहता है। इसके गड्ढों में पानी अपने आप सूख जाता है। इसमें पानी की भी कम आवश्यकता पड़ती है तथा मल का खाद भी बन जाता है।

इन्हीं सब खूबियों के कारण गांव वालों ने इसे अपनाने का फैसला किया। यह कहना है गांव के एक अन्य निवासी मनोहरलाल शर्मा जो अध्यापक भी हैं तथा पास के गांव के स्वच्छता प्रेरक भी।

गांव वालों को यह अनुदान प्राप्त करने में लगभग 15 दिन लगते हैं तथा तरीका काफी आसान है। इच्छुक व्यक्ति को एक अर्जी देनी होती है जो ग्राम सेवक, स्वच्छता प्रेरक या गांव के अध्यापक द्वारा प्रमाणित करवा कर पंचायत समिति में भेजनी होती है। एडवांस चाहने पर एडवांस मिल जाता है। वरना कार्य पूरा होने पर धनराशि मिल जाती है। यूनिसेफ की तरफ से पंचायत समिति में नियुक्त सहायक या कनिष्ठ अभियंता इसे सत्यापित कर देते हैं।

हालांकि निर्माण कार्यों में अनुमानतः 2000 से 3000 रुपये तक का खर्च आता है। पर यह अनुदान तो पहला कदम उठाने का साहस जुटाने के लिए है, ऐसा मानते हैं गांव के लोग।

चीतोस की यह चेतना गांव-गांव की चेतना बनेगी ऐसा विश्वास है स्वच्छता प्रेरक गोबिंद सहाय का। उनके इस विश्वास का आधार भी तो है। उनका सपना सच होगा और इस गांव की प्रेरणा सब गांवों की प्रगति बनेगी एक दिन।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी,
भारत सरकार, स्टेशन रोड,
कोटा- 324 002

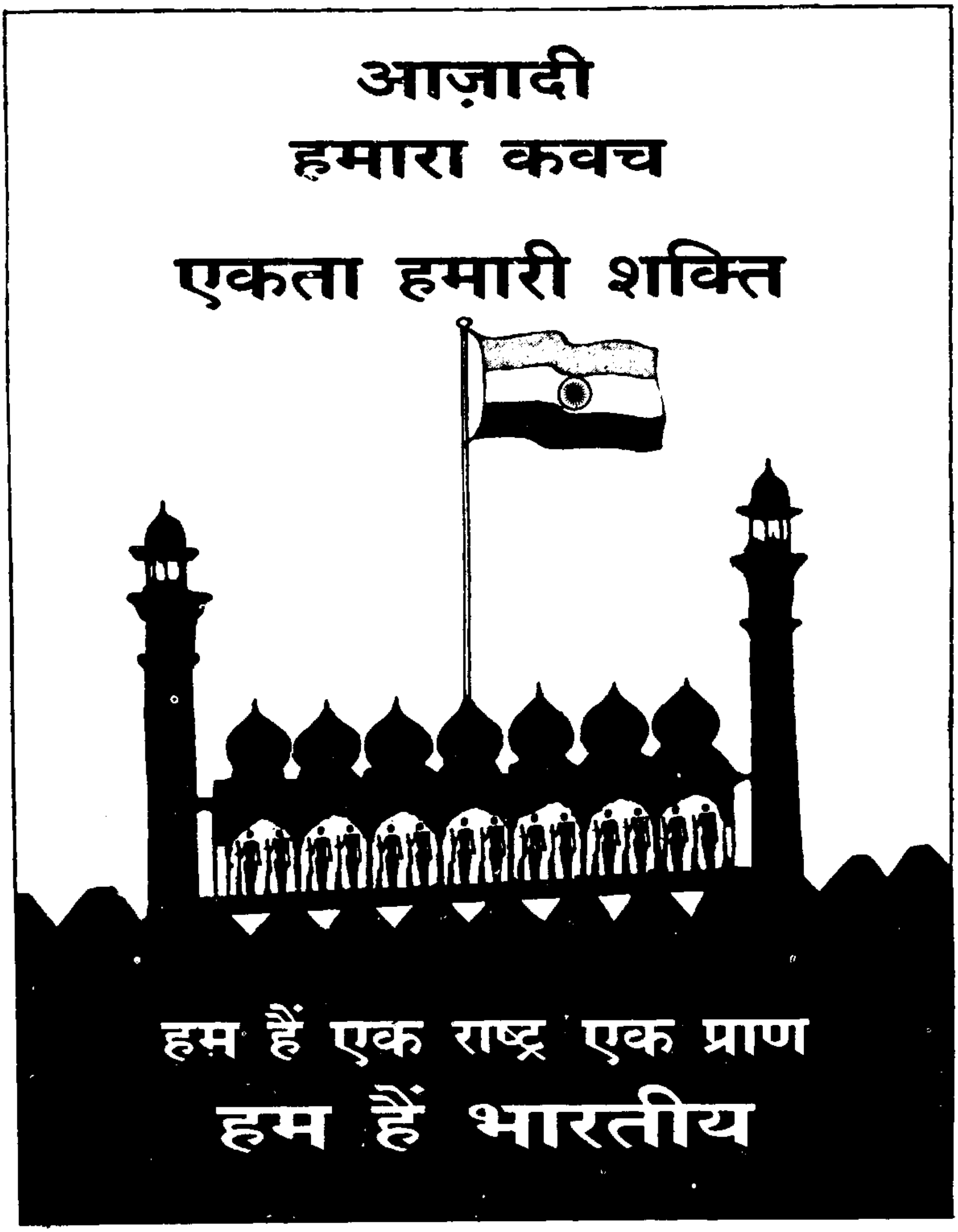
आज़ादी
हमारा कवच
एकता हमारी शक्ति
हम हैं एक राष्ट्र एक प्राण
हम हैं भारतीय

पंचायती राज संस्थाएं और स्थानीय वित्त की समस्या

डा0 दीपा भास्कर

स्थानीय वित्त के अभाव के कारण ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को विकास के कार्यक्रमों को आयाम प्रदान करने में बहुत सी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि बलवन्त राय मेहता ने विकेन्द्रीकरण पर अपनी रिपोर्ट में जोर देकर कहा था कि "प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ वित्तीय विकेन्द्रीकरण भी अति आवश्यक है।" जब तक प्रशासनिक अधिकार के साथ-साथ वित्तीय अधिकारों का सामंजस्य नहीं होगा, तब तक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा निर्मूल साबित होगी। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि राज्य सरकारें, पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय स्तर को सुदृढ़ बनाये जिससे कि विकास के कार्यक्रमों को पूरा करने में कोई बाधा न हो। कर निर्धारण एवं आय के समुचित साधन न होने के कारण पंचायती राज संस्थाओं के पास विकास को त्वरित करने का कोई ठोस कोषीय आधार नहीं है।

बलवन्त राय मेहता कमेटी के अनुसार "जब तक हम स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय साधनों से मजबूत नहीं कर लेते, स्थानीय स्तर पर, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार विकास असम्भव है।" बहुत सारे विकासशील देशों में ग्रामीण स्तर पर विकास की योजनाओं को प्रारूप तैयार करने के लिए इन संस्थाओं को अधिकार भी दिए गए हैं और इसके साथ-साथ वित्तीय साधनों का भी प्रावधान किया गया है, लेकिन अपने देश के राजस्व पर लिखे गये साहित्य के माध्यम से यह पता चलता है कि हमारे देश की ग्रामीण संस्थाएं बहुत पीछे हैं। के0 वेंकटरमन के अनुसार, "राज्य कोषीय नीति के बारे में राज्य एवं केन्द्र सरकारों की तरफ अधिक रुचि ली गई है एवं उसके अनुपात में स्थानीय वित्त नीति के बारे में कोई विचार नहीं किया गया।" इसका मुख्य कारण यह है कि पंचायती राज संस्थाओं का अपना कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है और वे राज्य सरकारों के अधीन कार्य करती हैं।

भारतीय संविधान की राज्य सूची के अनुच्छेद-5 के अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय साधनों का नियंत्रण एवं प्रबंध करें। इससे यह सवाल उठता है कि क्या राज्य सरकार के माध्यम से स्थानीय संस्थाओं द्वारा निरन्तर ग्रामीण विकास करना संभव है? इस संबंध में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि राज्य सरकारों को स्थानीय आवश्यकता के अनुसार ग्रामीण संस्थाओं को साधन मुहैय्या कराने में बहुत ही परेशानियों का सामना करना पड़ेगा। ग्रामीण स्तर पर जनसंख्या, साधनों, भौगोलिक स्थितियों और स्थानीय अनैक्यता की स्थिति में राज्य सरकारों को निचले स्तर तक कार्य करने में तमाम अवरोधों का सामना करना पड़ेगा। इसलिए इस स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि पंचायती राज संस्थाओं को उन साधनों से परिपूर्ण कर दिया जाय, जिससे कि वे अपने स्तर पर विकास की गति को तीव्रता प्रदान कर सकें। यद्यपि वित्तीय नियंत्रण के मामले में राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं में मतभेद हैं लेकिन यहां पर हम उन्हीं तथ्यों को उजागर करेंगे जिससे कि स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय रूप से लाभ मिल सके। किसी भी विकेन्द्रित व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि संस्था वित्तीय प्रबन्ध का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें अर्थात जिस स्तर पर व्यय करने का दायित्व है उसी स्तर पर निर्धारित आय का भी उत्तरदायित्व वहन करना चाहिए। इस सिद्धान्त के आधार पर पंचायती राज संस्थाओं को व्यय के मामले में सक्षम होना चाहिए जो कि तभी संभव है जबकि उनके पास अपने स्वयं के आय स्रोत हों। दूसरी तरफ राज्य सरकारों के वित्तीय नियंत्रण के कारण पंचायती राज संस्थाएं कमजोर होती गईं और उन्हें हमेशा राज्य सरकार की अधीनता में कार्य करना पड़ता है जिसके फलस्वरूप स्थानीय स्तर पर कार्य करने की रुचि समाप्त हो जाती है। डॉ0 डी0एन0मजूमदार के अनुसार, "जब तक पंचायती राज संस्थाओं को राज्य सरकार की वित्तीय निर्भरता से अलग नहीं किया जा सकता, स्थानीय वित्त की समस्या का समाधान संभव नहीं है।"

किसी भी स्थानीय संस्था को वित्तीय मामले में निपुणता प्राप्त करने के लिए उनके वित्तीय अधिकारों का पूर्व रूप से निर्धारण अत्यन्त आवश्यक है। अशोक मेहता कमेटी रिपोर्ट के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को अपने स्वयं के साधनों से वित्त जुटाने के अतिरिक्त पंचायती राज के तीनों स्तरों पर कुछ विशेष चीजों पर कर लगाने का अधिकार होना चाहिए जिससे कि इन संस्थाओं के पास स्थाई एवं निजी आय स्रोत

शेष पृष्ठ 36 पर

ग्राम सभा की बैठकें, समस्याएं व सुझाव

✍ बटुकेश्वर दत्त सिंह

भारत की संसद तथा राज्य सभा द्वारा पंचायत संबंधी 73वां संविधान संशोधन विधेयक-1992 पारित किए जाने तथा महामहिम राष्ट्रपति द्वारा इसे लागू किए जाने की मान्यता प्रदान करने के उपरान्त विशेष रूप से ग्राम्य विकास के बहुमुखी कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को संविधान के अन्तर्गत स्वीकारा गया है।

पंचायती राज व्यवस्था की प्रथम इकाई ग्राम सभा है, जिसकी कार्यकारिणी ग्राम पंचायत होती है। उत्तर प्रदेश पंचायती राज एक्ट, 1947 के अनुसार प्रारंभ में 1000 की जनसंख्या पर ग्राम सभाओं की स्थापना की गयी परन्तु 1955 से अधिनियम में संशोधन करके 250 की न्यूनतम जनसंख्या पर ग्राम सभा गठित करने का प्रावधान किया गया।

उत्तर प्रदेश पंचायती राज एक्ट 1947 के अनुसार ग्राम सभा की प्रति वर्ष दो बैठकें आवश्यक हैं : (1) खरीफ की बैठक (2) रबी की बैठक। प्रथम में अगले वर्ष के लिए आय-व्यय के प्रस्तावों पर विचार एवं उन्हें पारित करना तथा द्वितीय में बीते वर्ष के आय-व्यय पर विचार किया जाता है।

उक्त दो बैठकों के अतिरिक्त शासन के निर्देश पर अथवा ग्राम सभा के 1/5 सदस्यों के अनुरोध पर ग्राम प्रधान सामान्य या असाधारण बैठक बुला सकता है। ग्राम सभा की बैठकों की अध्यक्षता प्रधान द्वारा की जाती है। उनके अनुपस्थित होने पर उप प्रधान ग्राम सभा की बैठक सम्पन्न कराते हैं। बैठक के सफल संपादन में प्रधान/अध्यक्ष की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। उसमें टीम भावना होनी चाहिए। वह निर्वाचित होने के उपरान्त अपनी ग्राम सभा के सभी सदस्यों से समान व्यवहार करे।

डा0 बी0एल0शाह द्वारा कुमायूं डिवीजन के अन्तर्गत किये गये एक अध्ययन "पंचायत राज" के अनुसार मुश्किल से 20 प्रतिशत लोग ग्राम सभा की बैठकों में भाग लेते हैं जिनमें महिलाओं की भागीदारी नहीं के बराबर होती है। नि:संदेह ऐसी बैठकों में लिए गए निर्णय वैधानिकता से दूर व सभी के हित के नहीं हो सकते। ग्राम वासियों की निर्णय में भागीदारी न होने से वे निर्णय के प्रति संवेदनशील नहीं होंगे। प्रधान का नैतिक कर्तव्य तो है ही कि वह सभी सदस्यों को बैठक में भाग लेने के लिए राजी करे परन्तु समस्त सदस्यों को भी अपना कर्तव्य समझकर बैठक में भाग लेना चाहिए तथा उनमें नि:संकोच अपने विचार व्यक्त करने चाहिए। चूंकि ग्राम सभा की खुली बैठक में ही उस ग्राम के एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों का चयन तथा जवाहर रोजगार योजना आदि के कार्यक्रमों पर निर्णय लिए जाते हैं। अत: इन बैठकों का अपना विशेष महत्व है।

अनुभव की जा रही समस्याएं

1. बैठकें ऐसे समय में बुलाई जाती हैं जब फसल की बोआई-कटाई चल रही हो तो उपस्थिति कम होना स्वाभाविक है।
2. जब ग्राम प्रधान गुटबाजी में पड़कर पक्षपात करते हैं तो दूसरा वर्ग बैठकों का बहिष्कार करता है।
3. ग्राम सभा की वित्तीय स्थिति कमजोर होने से भी उसके द्वारा कोई विकास कार्य सम्पादित न करा सकने के कारण सदस्यों में उदासीनता आ जाती है और वे बैठकों में भाग नहीं लेते।
4. ग्राम सभा की बैठक को विकास खण्ड द्वारा आयोजित बैठक मानकर प्राय: अन्य विभागों के ग्राम स्तरीय अपेक्षित कर्मचारी व अधिकारीगण भाग नहीं लेते हैं, जिससे ग्राम सभा की बैठक की उपादेयता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है।
5. ग्राम सभा की बैठकों में लिए गये निर्णयों पर कार्यवाही न किए जाने से ग्राम सभा की बैठकों के प्रति विश्वास उठ जाता है।
6. ग्राम प्रधान द्वारा अपने विरोधियों को सूचित न करने से ग्राम सभा की वैधानिक बैठक नहीं हो पाती है।
7. गणपूर्ति (कोरम) के अभाव में स्थगित बैठक को बिना कोरम पूरा किए बैठक कराना, जिससे ग्राम सभा की बैठक का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है।
8. कुछ ग्राम सभाओं की बैठक ग्राम प्रधान के घर पर या व्यक्ति विशेष के घर पर करना जिससे बैठक का कोरम पूरा नहीं हो पाता।
9. आम जनता में जागरूकता का अभाव।
10. रुढ़िवादिता तथा पर्दा प्रथा के कारण महिला वर्ग का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है।
11. ग्राम पंचायत के सदस्यों द्वारा ग्राम सभा की बैठक में रुचि न लेना।

समाधान के उपाय

यदि समस्या का समाधान प्रारम्भिक स्तर पर कर लिया जाय तो वह गंभीर रूप नहीं धारण कर पायेगी। ग्राम सभाओं की बैठक समुचित रूप से न होने से शासन की नीति का सफल संचालन नहीं हो पाता तथा ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में बाधा आती है। यदि समस्याओं का समाधान ग्राम स्तर पर ही कर लिया जाय तो ऊपर के स्तरों पर शासन तथा प्रशासन स्वतः मुक्ति पा सकते हैं। समस्याओं के अधोलिखित समाधान विचारणीय हैं :

1. ग्राम सभा की बैठक उसके सदस्यों की आम सहमति से ही बुलाई जाय।
2. पंचायत पदाधिकारी के पद पर चुने जाने के पश्चात "सर्वे भवन्तु सुखिनः" के दृष्टिकोण से कार्य करना चाहिए।
3. ग्राम सभाओं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।
4. ग्राम सभा की बैठक में सभी संबंधित विभागों के कर्मचारियों/अधिकारियों की उपस्थिति को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। अनुपस्थित अधिकारी/कर्मचारी के कार्य व्यवहार में सुधार लाने हेतु समुचित कार्यवाही की जानी चाहिए।
5. ग्राम सभाओं की बैठक में पारित प्रस्तावों को क्रमबद्ध करके उन्हें क्षेत्र समिति की बैठक में अनुमोदित किया जाना चाहिए तथा उन्हीं प्रस्तावों के अनुरूप कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाना चाहिए।
6. ग्राम सभा की बैठक का कार्यवृत्त (एजेण्डा) सभी सदस्यों की जानकारी हेतु सार्वजनिक स्थान पर लगा दिया जाना चाहिए।
7. कोरम के अभाव में स्थगित बैठक को करने के लिए पुनः कोरम पूर्ति का नियम रखा जाए। पुनः कोरम 1/5 के स्थान पर 1/10 किया जा सकता है।
8. ग्राम सभाओं की बैठक सार्वजनिक स्थान पर करायी जानी चाहिए। यदि जिन ग्राम सभाओं में सामुदायिक केन्द्र / पंचायत घर नहीं है, वहां पर इनका निर्माण प्राथमिकता देकर कराया जाना चाहिए।
9. जनता में जागरूकता लाने हेतु उन्हें शिक्षित किया जाए। प्रत्येक कार्यक्रम की जानकारी देने के साथ उनके उत्तरदायित्वों से उन्हें परिचित कराया जाय।
10. रूढ़िवादी भावना तथा पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों को समाप्त करने हेतु ग्रामवासियों विशेषकर महिलाओं को साक्षर करने की आवश्यकता है, जिससे वे अपने दायित्वों को समझते हुए ग्राम सभा के वास्तविक स्वरूप को मजबूती प्रदान कर सकें।
11. ग्राम पंचायत के सदस्यों तथा प्रधान को ग्राम सभा की बैठक में भाग लेना अनिवार्य किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त प्रस्तावित समाधानों के साथ-साथ प्रत्येक नागरिक को अपनी सोच में परिवर्तन लाते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम" की अवधारणा पर कार्य करना चाहिए। यदि इस भावना से प्रेरित होकर ग्राम सभा के सभी वयस्क सदस्य ग्राम सभाओं की बैठक में अपनी भागीदारी करें तो निश्चित रूप से ग्राम सभायें अपने वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति कर सकती हैं। यदि इस मानसिकता का परिपालन किया जाय तो गांधीजी का ग्राम स्वराज का सपना सार्थक हो सकता है और प्रत्येक व्यक्ति स्वतः अपना कल्याण करते हुए विकास कार्यक्रमों के संचालन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

उप निदेशक
उ० प्र० राज्य ग्राम विकास संस्थान
बख्शी का तालाब, लखनऊ

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया ध्यान रखें कि रचना संक्षिप्त एवं रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रामाणिक होनी चाहिए। रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

भूमि सुधार क्यों जरूरी

✍ यतीश मिश्र

गांव और गरीबी के रिश्ते सदियों पुराने हैं। इस रिश्ते को बनाए रखने में ब्रिटिश शासकों से लेकर अपने शासकों, सभी ने गांव की हालत सुधारने की बातें कही हैं। इस दिशा में कोशिशें भी हुई हैं। लेकिन गांव की स्थिति में संतोषजनक सुधार नहीं हो सका है।

देश की अधिसंख्य आबादी ग्रामीणों की है जिनकी आमदनी का मुख्य स्रोत कृषि है। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि सभी किसानों के पास कृषि भूमि नहीं है। जिनके पास है, भी वे स्वयं खेती नहीं करते, या करना नहीं चाहते। वे औद्योगिक विकास के साथ ही दूसरे उत्पादन क्षेत्रों की तरफ मुड़ गए हैं। कृषि भूमि के समुचित वितरण की तमाम कोशिशों के बावजूद भी हकीकत यह है कि अभी भी बहुत से किसान खेती योग्य भूमि से वंचित हैं। भूमि वितरण की विसंगतियों के कारण कुछ हाथों में ही बड़ी मात्रा में कृषि भूमि सिमट कर रह गई है। फलत: सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोग कृषि योग्य भूमि के मामले में भी पिछड़े ही रहे हैं।

भूमि सुधार का अभिशाप

भूमि सुधार से तात्पर्य ऐसी समेकित योजनाओं से है जो कृषि ढांचे में खामियों के कारण होने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास की रुकावटों को दूर करें, खेती के तरीकों में बदलाव लाएं, भूमिहीन किसानों को भूमि न सिर्फ कागज पर दिलवाए बल्कि जमीन पर मालिकाना हक भी प्राप्त हो सकें और ऋण की उपलब्धता सुगमतापूर्वक हो सके। मुख्य रूप से इसका मकसद है किसान को शोषण से बचाकर उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाना ताकि वे समाज में अन्य वर्गों के समकक्ष हो जाएं और ग्रामीण जीवन में समाजिक न्याय स्थापित किया जा सके।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान उठाये गए कदम

स्वातंत्रोत्तर भारत के योजनाबद्ध विकास के तहत प्रथम पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार पर बल दिया गया था। इसके माध्यम से अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण, मध्यस्थों का अंत, खेतिहरों को मालिकाना हक दिलवाना, भूस्वामित्व के क्षेत्र का सीमा निर्धारण तथा सहकारी खेती को प्रोत्साहन देने की कोशिश की गई थी। प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में जागीरदारी को खत्म कर दिया गया। अत्यधिक भूमि धारकों के पास से अतिरिक्त भूमि लेकर भूमिहीनों को बांटी गयी। इन भूमिधारकों के पास देश की लगभग चालीस प्रतिशत अतिरिक्त भूमि कब्जे में थी जिसका मुआवजा करीब 670 करोड़ रुपये आंका गया था। उस समय देश में चार प्रतिशत खाते ही दस हेक्टेयर से अधिक भूमि के थे। 1974 तक करीब 37.4 लाख कृषकों के बीच 36.7 लाख हेक्टेयर भूमि वितरित की गई थी। यानी प्रति किसान को एक हेक्टेयर से भी कम भूमि दी जा सकी।

अन्य पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भी भूमि सुधार के विभिन्न आयामों पर जोर दिया गया है। काफी हद तक सफलता भी मिली है। लेकिन अभी भी इस दिशा में एक लम्बे प्रयास की आवश्यकता है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अनुसार भूमि सुधारों को नए सिरे से लागू करना गरीबी को दूर करने और कृषि में उत्पादकता बढ़ाने का एक सक्षम माध्यम है। खासकर सिंचित क्षेत्रों में उत्पादकता और भूमि की सक्षमता में सुधार लाने के लिए जमीन के जोतों की चकबंदी के प्रयास को जारी रखना चाहिए। प्रारूप में इस बात का भी जिक्र है कि अनौपचारिक और मौखिक रूप से बनाए गए काश्तकारों के नाम दस्तावेज में दर्ज किए जाने चाहिए और उन्हें काश्तकारी की सुरक्षा उपलब्ध क़राई जानी चाहिए। योजना आयोग की मंशा है कि बटाईदारों के अधिकारों की रक्षा के लिए आठवीं योजना के दौरान प्रयास किए जाने चाहिए। आवश्यकता इस बात की भी है कि भूमि सुधार को प्रभावी बनाने के लिए जमीन के कागज-पत्रों को सही व आधुनिक बनाया जाए।

आठवीं योजना में राजस्व तंत्र को मजबूत बनाने तथा जमीन संबंधी दस्तावेज में हाल तक के आंकड़ों को दर्ज करने की बड़ी योजना है। इसे तेजी से पूरा करने और आंकड़ों को तैयार करने में लागत में कमी लाने के लिए विज्ञान और टेक्नोलाजी के निवेशों का उपयोग किया जाएगा और ऐसी सूचनाओं को हर व्यक्ति को उपलब्ध कराने की व्यवस्था है।

चकबंदी की आवश्यकता

देश में अधिकतर कृषि जोतें छोटी और बिखरी पड़ी हैं। कृषि उपज बढ़ाने के लिए जरूरी है कि खेती में आधुनिक तकनीक लागू की जाए। इसके लिए जोत सीमा के साथ-साथ खेतों की

चकबंदी करना अनिवार्य है। चकबंदी का काम पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में लगभग पूरा हो गया है। अन्य राज्यों उड़ीसा, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश व गुजरात के चुने हुए इलाकों में भी पूरा हो चुका है। देश के अन्य राज्यों में भी चकबंदी कानून पारित किए जा चुके हैं। अधिकतर राज्यों में चकबंदी को अनिवार्य घोषित किया गया है जबकि मध्यप्रदेश और पश्चिम बंगाल में इसे ऐच्छिक करार दिया गया है। लोगों की आशंकाओं के बावजूद चकबंदी के मामले में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। चकबंदी का काम निपटाने में सरकारी तंत्र को हिदायत है कि छोटे, सीमांत एवं बटाईदार किसानों के हितों की रक्षा की जाए।

भूमि सुधार के उपायों को प्रभावशाली बनाने के लिए समय-समय पर सम्मेलन होते रहे हैं। जुलाई 1972 में मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में जो सिफारिशें की गईं वे इस प्रकार हैं:

भूमि जोत की उच्चतम सीमा सारे परिवार पर लागू की जानी चाहिए और पांच सदस्यों के परिवार के लिए उच्चतम सीमा 10 से 18 एकड़ तक निर्धारित की जानी चाहिए। विश्वस्त सिंचाई वाली जिस भूमि में एक वर्ष में केवल एक ही फसल उगाई जा सकती है, उसकी उच्चतम सीमा 27 एकड़ तक हो सकती है। कुछ परिस्थितियों में छूट देने की सिफारिश भी की गई, जैसे- चीनी के कारखानों को 100 एकड़ तक भूमि अपने पास रखने की छूट तथा चाय काफी आदि के बागानों को पहले से मिलने वाली छूट। अन्य सभी प्रकार की भूमियों के लिए जोत की अधिकतम सीमा 54 एकड़ निर्धारित की जाए।

जोत सीमाबंदी में कठिनाइयां

सरकारी कोशिशों के बावजूद नई जोत सीमाबंदी देश में पूरी तरह से लागू नहीं हो सकी है। नगालैंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश व मिजोरम जैसे राज्यों में जहां कि भूमि का स्वामित्व शक्तिशाली भूमि स्वामियों तथा समूहों के पास था, इस नीति को लागू करने में कठिनाई महसूस हुई। अक्सर यह कहा जाता है कि बड़े और शक्तिशाली भूस्वामी सीमाबंदी नियमों का उल्लंघन करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर हुए विभिन्न सर्वेक्षण यह बताते हैं कि अनुमानित अतिरिक्त भूमि का क्षेत्र वास्तविक घोषित अतिरिक्त भूमि के क्षेत्र से कहीं अधिक है।

सीमाबंदी कानून के तहत हासिल हुए जमीनों के वितरण में बड़ी कठिनाई होती है। इसकी वजह है कि अधिकतर भूखंड मुकदमेबाजी में फंसे हैं और वे पुनर्वितरण के योग्य नहीं हैं। ये जमीनें धार्मिक, शैक्षणिक व दातव्य संस्थाओं के लिए सुरक्षित होती हैं। सीमाबंदी में मिली जमीनें गुणवत्ता में घटिया होती हैं। यही वजह है कि लाभान्वित व्यक्तियों को भूमि का आवश्यक विकास करने के लिए तथा निवेशों की खरीद के लिए 2500 रुपये प्रति हेक्टेयर की दर से सहायता दी गई है। इसमें केंद्र और राज्यों की बराबर की भागीदारी होगी। इस योजना से भूदान के अन्तर्गत प्राप्त भूमि को भी लाभ मिलेगा।

हमारे देश में समस्या केवल खेतों के उपविभाजन की नहीं है बल्कि बड़ी समस्या यह है कि यह उपविभाजित खेत अलग-अलग जगह बिखरे पड़े हैं। यह अपखंडन की समस्या उपविभाजन की समस्या से भी अधिक गंभीर है। यद्यपि ये दो भिन्न-भिन्न समस्याएं हैं लेकिन दोनों के प्रभाव करीब-करीब एक ही हैं। इन दोनों समस्याओं का मूल कारण है- तेजी से बढ़ रही हमारी आबादी। आबादी के अनुपात में उपज नहीं बढ़ी। फलत: भारतीय ग्रामीण परिवार की आर्थिक स्थिति दिनोंदिन बदतर होती चली गई।

सिंचाई की असमान उपलब्धता या अनुपलब्धता, कृषि उपज दर में भिन्नता व पारंपरिक सोच के कारण जमीनों के उपविभाजन की समस्या पैदा हुई। हमारे यहां कार्यशील जोतों का औसत आकार लगातार घटता जा रहा है।

भारत में उपविभाजन का एक बहुत बड़ा कारण उत्तराधिकार के नियम हैं। इससे भूमि तो समान रूप से बांटी जाती है लेकिन तीन-चार पीढ़ियों में ही भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाते हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात उसकी भूसम्पत्ति का उसके उत्तराधिकारियों में समान वितरण होता है। भारतीय किसान का लगाव अपनी पैतृक भूमि से कुछ ज्यादा ही होता है। इस कारण वह अपनी पैतृक भूमि का छोटा-सा टुकड़ा भी लेने को तैयार रहता है। प्रत्येक हिस्सेदार अपना हिस्सा एक जगह लेना पसंद न कर पारिवारिक भूमि की प्रत्येक किस्म में अपना हिस्सा लेना चाहता है। अत: प्रत्येक परिवार हिस्सेदार को न केवल छोटे-छोटे टुकड़े मिलते हैं बल्कि ये टुकड़े काफी दूर-दूर भी मिलते हैं।

उपविभाजन के दुष्परिणाम

जोतों के उपविभाजन व उपखंडन के नतीजे अच्छे नहीं निकलते। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर कृषि कार्य करने से इसकी लागत बढ़ जाती है और उपयोगिता में ह्रास होता है। चूंकि यह आकार में बहुत छोटे होते हैं अत: न तो हल बैलों को समुचित उपयोग हो पाता है न ही खेती के अन्य उपकरणों का। कुछ तो आकार में इतने छोटे होते हैं कि उनमें ठीक से जोता या बोया भी नहीं जा सकता। इसलिए अक्सर उन्हें जोता भी नहीं जाता। कोशिश होती है इसमें ऐसे फसल लगाने की जिसे बिना जुताई

के ही बोया जा सके। इस प्रकार उत्पादन नहीं के बराबर होता है व घटिया किस्म की फसल लेने पर बाध्य होना पड़ता है। इन खेत के टुकड़ों में खेती में आधुनिक औजार का प्रयोग तो हो ही नहीं सकता। इन टुकड़ों में ट्रैक्टरों, स्क्रेपरों, बूलडोजरों व क्रेशरों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। उपविभाजन की वजह से न तो इन खेतों में कुएं खोदे जा सकते हैं और न ही बाड़ लगाई जा सकती हैं। दूर के कुएं से पानी लाने में लागत अधिक लगती है। बाड़ या मेड़ें लगाने का खर्च भी इसमें अधिक लगता है। साथ ही बहुत सारी जमीन इस काम में बेकार चली जाती है। एक अनुमान के अनुसार कृषि भूमि का 3 प्रतिशत भाग मेड़बंदी में बेकार चला जाता है।

खेत के छोटे-छोटे टुकड़ों के कारण और कई अप्रत्यक्ष घाटे होते हैं जो ऊपरी तौर पर महसूस नहीं किए जाते। मसलन, समय और शक्ति का व्यर्थ में अपव्यय होना, किसानों के बीच रास्ता व चौहद्दी को लेकर आए दिन झगड़े होना, खेत दूर-दूर बिखरे होने के कारण इन पर निगरानी रखने में कठिनाई और एक खेत से दूसरे खेत में खाद, बीज और अन्य औजार ले जाने में व्यर्थ का धन और समय की बर्बादी तथा छोटे आकार के खेतों पर ऋण आसानी से न मिल पाना वगैरह।

इन सब कठिनाइयों से निजात पाने का एकमात्र उपाय है-चकबंदी। चकबंदी से तात्पर्य है किसान के बिखरे हुए खेतों को एक स्थान पर लाने की प्रक्रिया। इसमें एक कृषक की पूरी जमीन एक ही स्थान पर कर दी जाती है। चकबंदी दो प्रकार की होती है। एक तो अनिवार्य और दूसरी ऐच्छिक। अनिवार्य चकबंदी में खेतीहर किसानों को अनिवार्य रूप से चकबंदी करनी पड़ती है। अनेक राज्यों में इससे संबंधी कानून बना दिए गए हैं। हमारे यहां नौ राज्य ऐसे हैं जहां चकबंदी के लिए कोई कानून नहीं है। ऐच्छिक चकबंदी किसान की स्वेच्छा पर निर्भर करती है। यह सर्वप्रथम हमारे देश के पंजाब में सन् 1921 में शुरू की गई थी। गुजरात, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि में ऐच्छिक चकबंदी की जाती है। इसे कार्यरूप देने में कठिनाई यह होती है कि किसानों इसके फायदे को समझ नहीं पाते। वे इस बदलाव के लिए अपने आप को तैयार नहीं कर पाते। पैतृक संपत्ति के प्रति किसानों का मोह इस कार्य में बड़ी बाधा है। लेकिन लोगों को शिक्षित करके, उनमें इसके प्रति जागरूकता पैदा कर तथा उन्हें विश्वास में लेकर इस काम को आसान् किया जा सकता है।

पिछले चालीस वर्षों में लगभग प्रत्येक केन्द्रीय सरकार ने अपने-अपने ढंग से भूमि सुधार के प्रारूप को संसद में प्रस्तुत किया और हर बार इसे नौकरशाही की फाइलों में दफना दिया गया। भूमि सुधार कार्यक्रम के दायरे को कम करके आंका जाता रहा है। इसे खेती और बंजरहीन जैसे मुद्दों तक ही देखने की कोशिश की गई है।

भूमि सुधार का एक बहुत बड़ा भाग है भूमि का समान रूप से वितरण। लेकिन विभिन्न राज्यों कर्नाटक, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र व उत्तर प्रदेश पर नजर डालते ही भूमि वितरण की असमानता स्पष्ट हो जाती है। भूदान आंदोलन के दौरान अधिकतर बंजर भूमि ही दान में दी गई थी। इसके बंटवारे भी समान रूप से नहीं हुए थे। इस असमान बंटवारे को बनाए रखने में स्वार्थी तत्वों का हाथ रहा है।

इसके बावजूद निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि देश में भूमि सुधार कार्यक्रम सही दिशा में चलाए जा रहे हैं। जरूरत है सिर्फ इसमें तेजी लाने की और इसके व्यावहारिक पहलुओं पर जोर देने की। साथ ही सरकार की यह कोशिश हो कि वह इन्हें सही अर्थों में लागू करवाने के लिए जन सहयोग प्राप्त करें।

सी-41, रीड्स लाईन
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-7

आंखों में तैरते हैं लहलहाती फसलों के स्वप्न

✍ प्रभात कुमार सिंघल

फसलों को अपने खेतो में देख भला कौन खुशी से फूला न समायेगा। कभी कल्पना भी नहीं थी कि जिस धरती पर बरसात या कुएं के पानी से खेती होती है वहीं चंबल नदी का पानी पहुंच जायेगा और वर्षा पर निर्भर खेती एक स्वप्न की बात होकर रह जायेगी। एक एक मौसम में दो फसलें भी जा उपजाई सकेंगी। उपज के उत्पादन में बढ़ोत्तरी भी कई गुणा हो जाएगी। उन्नत बीज और उर्वरक का प्रयोग खेती से अच्छा उत्पादन लेने के लिए होने लगेगा। काश्तकारों की आंखों में तैरते ऐसे ही स्वप्नों को साकार किया है कोटा में सिंचित क्षेत्र विकास परियोजना चंबल ने।

चंबल सिंचाई परियोजना राज्य की महत्वाकांक्षी वृहत सिंचाई परियोजनाओं में से एक है। यह मध्य प्रदेश एवं राजस्थान की संयुक्त लाभ वाली परियोजना है। इस महत्वपूर्ण परियोजना में चंबल नदी पर गांधी सागर, राणा प्रताप सागर, जवाहर सागर, जलाशयों एवं कोटा बैराज का निर्माण करा कर नहरों द्वारा वर्ष 1960 से सिंचाई आरंभ की गई। परियोजना में राजस्थान का 2.29 लाख हेक्टेयर तथा लगभग उतना ही मध्य प्रदेश में सिंचित होता है। राजस्थान में दाईं एवं बाईं मुख्य नहर द्वारा 1.02 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई होती हैं। दाईं एवं बाईं मुख्य नहरों तथा वितरिकाओं की कुल लम्बाई 1376 कि.मी. है।

अन्तिम छोर तक पानी से उत्पादन बढ़ा :

हर साल अन्तिम छोर का काश्तकार टकटकी लगाये आशा संजोये रखता कि उसके खेतों में भी पानी आयेगा। नहर के अन्तिम किनारे के खेतों पर पानी पहुंचते पहुंचते प्राय: ठहर जाता था। और अगर पहुंचता भी था तो उसकी जरूरत से काफी कम होता था। ऐसे काश्तकारों के दर्द का अहसास संजोकर कोटा में आये सिंचित क्षेत्र विकास आयुक्त श्री टी.आर.वर्मा। उन्होंने परियोजना संचालन के क्रम में अन्तिम छोर के किसान को खेती योग्य पानी मिलने को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की। नहरों की मरम्मत और उचित रख-रखाव का संकल्प भी उनके मन में था। पद भार संभालने पर उन्होंने अपने प्रयासों को क्रियान्वित भी किया। उन्होंने आखिरी छोर के काश्तकार के खेत तक पानी भेजने के लिए प्रथम बार वर्ष 1991-92 में आयुक्त कार्यालय में सिंचाई एवं नहरों के रख-रखाव संबंधी समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए एक नियंत्रण कक्ष स्थापित किया। टेलक्षेत्र में निरंतर भ्रमण कर काश्तकारों से सम्पर्क बनाये रखा। मौके पर उनकी समस्याएं सुन समाधान की कार्यवाही की। साथ ही निर्माण कार्य काश्तकारों की मांग के अनुसार स्वीकृत किए गये। समस्त क्षेत्रीय अधिकारियों द्वारा भी सघन भ्रमण कर फसल के लिए समय पर पानी उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया गया। बूंदी क्षेत्र में गन्ने की पैदावार जो वर्ष 1990-91 में 8 लाख क्विंटल थी वह बढ़ कर वर्ष 1991-92 में 19 लाख क्विंटल हो गई।

वर्ष 1991-92 में भी अन्तिम छोर के खेत तक पानी उपलब्ध कराने की सुदृढ़ व्यवस्था से 10 हजार एकड़ क्षेत्र में अधिक सिंचाई सुविधा उपलब्ध हुई और वे गत वर्षों की जल उपलब्धता की तुलना में ज्यादा सन्तुष्ट थे। वर्ष 1991-92 में नहरों द्वारा रबी की फसल हेतु कुल 5.04 लाख एकड़ में जल उपलब्ध कराया गया जो एक कीर्तिमान है एवं पिछले 33 वर्षों में एक रिकार्ड उपलब्धि बना। वर्ष 1992-93 में भी यही प्रयास किए गये और काश्तकारों की खेती के लिए पर्याप्त जल मिला।

परियोजना क्षेत्र में भूमि विकास कार्य भी जारी रखे गये। विगत वर्ष चालू वित्तीय वर्ष में16 केचमेंटस के 2,582 हेक्टेयर में भूमि सुधार कार्य किए गए। इस मद पर 153.30 लाख रुपये की राशि नवंबर 92 तक व्यय की गई। विगत दो वर्षों में 49.95 लाख रुपये का मुआवजा राशि का भुगतान काश्तकारों को कर आवंटित राशि का शत प्रतिशत उपयोग किया गया। सिंचाई व्यवस्था बेहतर बनाने के लिए नहरों की मरम्मत एवं रख रखाव पर प्रथम बार बड़ी धन राशि 726.78 लाख रुपये विगत दो वर्षों में व्यय की गई।

किये गये ठोस उपायों से कृषि उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि हुई है। परियोजना क्षेत्र में फसल चक्र पद्धति में भी काफी परिवर्तन आया है। सरसों एवं सोयाबीन की फसलों के प्रति रुझान बढ़ा

है। वर्ष 1991-92 में एक लाख 67 हजार 389 हेक्टेयर में सरसों की खेती की गई जबकि 10 वर्ष पूर्व सरसों की खेती 10 हजार 851 हेक्टेयर में की गई थी।

खरीफ में सोयाबीन की खेती की ओर विशेष रुझान बढ़ा है। इस वर्ष 1992-93 में सर्वाधिक 77 हजार 691 हेक्टेयर में सोयाबीन का उत्पादन किया गया। धान की खेती इस वर्ष 30 हजार हेक्टेयर में की गई जो विगत एक दशक में रिकार्ड उत्पादन था।

परियोजना क्षेत्र में पौध संरक्षण पद्धति पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। गत वर्ष 2 लाख 45 हजार 414 हेक्टेयर में पौध संरक्षण कार्य किया गया।

अधिक बजट हेतु प्रयास

चंबल क्षेत्रीय विकास आयुक्त के अनुसार विश्व बैंक ने चंबल परियोजना के दूसरे चरण की 79.57 करोड़ रुपये की योजना भारत सरकार को भेजी है। इसकी स्वीकृति आने पर नहरों का आधुनिकीकरण एवं उनकी विशेष मरम्मत के कार्य किये जा सकेंगे।

राज्य सरकार को नहरी प्रणाली में विशेष मरम्मत के लिए दो करोड़ रुपये के प्रस्ताव वर्ष 1992-93 में भेजे गये हैं। आगामी वर्ष 1993-94 में पंचायत समिति के गठन एवं सुल्तानपुर में 2000 हेक्टेयर क्षेत्र में राजड परियोजना के अन्तर्गत भूमि सुधार कार्य प्रस्तावित है।

जल भराव एवं लवणता से मुक्ति के प्रयास

चंबल सिंचित क्षेत्र में जल भराव एवं लवणीयता की समस्या के निदान हेतु केनेडियन इन्टरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी (सीडा) एवं राज्य सरकार की मिली जुली एग्रीकल्चर रिसर्च ड्रेनेज परियोजना के क्रियान्वयन ने भी गति पकड़ी है। इसमें जल भराव एवं लवण से युक्त 25 हजार हेक्टेयर में भूमिगत जल निकास कार्य के लिए पौने छह करोड़ केनेडियन डालर अर्थात 144 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। परियोजना को वर्ष 1996 तक पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है।

के.आर. 56, सिविल लाइन्स
कोटा 324001 (राज.)

पृष्ठ 29 का शेष

उपलब्ध हों। इसके लिए यदि आंशिक रूप से कुछ वित्तीय अधिकार नीचे के स्तरों पर प्रदान किए जाए तो कोई खास समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा। कर जांच समिति, 1955 ने भी अपनी एक संस्तुति में कहा था कि, आंशिक रूप से कुछ चीजों पर कर लगाने के अधिकार पंचायती राज्य संस्थानों को प्रदान किए जाने चाहिए जिससे कि स्थानीय स्तर पर विकास कार्यों का सुचारू रूप से संचालन किया जा सके। करों का हस्तांतरण करते समय कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे किसी भी कर के हस्तान्तरण के पहले यह ध्यान देना आवश्यक है कि उच्च स्तर पर, कर वसूली पर किया गया व्यय स्थानीय स्तर पर कम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्थाओं द्वारा कर लगाने चाहिए। अतः करदाता, कर लगाने वाली संस्था और कर वसूल करने वाले के अधिकारों के मध्य निश्चितता का वातावरण होना चाहिए।

स्थानीय वित्त का मुख्य स्रोत राज्यों व केन्द्र सरकार द्वारा, कर अन्तरण से प्राप्त होता है। इसके तहत राज्य सरकारों द्वारा वसूल किया गया कर, पूरी तौर पर स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित हो जाता है। इसके अतिरिक्त आय के कुछ ऐसे मद होते हैं जिन्हें राज्य सरकारें व स्थानीय सरकारें आपस में बांट लेती हैं। उदाहरण के तौर पर दक्षिण के कई राज्यों में भू-राजस्व राज्य सरकारें आपस में बांट लेती हैं। लेकिन कुछ राज्यों को छोड़कर यह क्रिया कहीं भी क्रियान्वित नहीं हो रही है। उदाहरणार्थ आन्ध्रप्रदेश, उ0प्र0, उड़ीसा, जम्मू एवं कश्मीर, त्रिपुरा, मणिपुर, मेघालय इत्यादि में राजस्व का बंटवारा नहीं होता। कुछ राज्यों में प्राप्त करों का कुछ प्रतिशत स्थानीय संस्थाओं को प्रदान किया जाता है। इस तथ्य के माध्यम से यह निष्कर्ष बहुत ही लाभदायक है कि जिन करों की वसूली में स्थानीय संस्थाओं को अत्यधिक प्रशासनिक व्यय करना पड़े, उनका स्थान्तरण ही पंचायती राज्य संस्थाओं के लिए उचित है। लेकिन यहां राज्य सरकारों को यह ध्यान देना आवश्यक है कि कर प्राप्ति का समुचित हस्तान्तरण होना चाहिए। इस विधा के तहत, स्थानीय संस्थाओं की सहमति अवश्य होनी चाहिए कि प्राप्त आय का हस्तान्तरण सही है या नहीं! दूसरी तरफ राज्य सरकारों ने स्थानीय अनेक्यता को ध्यान में रखकर आय का बंटवारा किया है। इस प्रकार राज्य सरकारों को स्थानीय संस्थाओं का वित्तीय मां के रूप में पालन-पोषण करना चाहिए।

प्रवक्ता -अर्थशास्
संगठक महाविद्यालय अल्मोड़ा (उ0प्र0
पिन-26360

बाल-कल्याण संबंधी
संविधान के अवतरण

अनुच्छेद 23- मानव के दुर्व्यापार और बलात्श्रम का प्रतिषेध -

(1) मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य जबरदस्ती लिया जाने वाला श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबन्ध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।

(2) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म, मूल, वंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद 24- कारखाने आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध -

चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

अनुच्छेद 38-राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा -

(1) राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था, की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक-न्याय, राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करें, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।

(2) राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा और न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता समाप्त करने का प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 39 राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व -

राज्य अपनी नीति का विशिष्टतया, इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से -

• • • •

(ङ) पुरुषों और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े, जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो:

• • • •

(व) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं और बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का . . . .

उपबन्ध - राज्य काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए . . . . उपबन्ध करेगा।

अनुच्छेद 45- बालकों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध- राज्य, इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/93
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/93
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

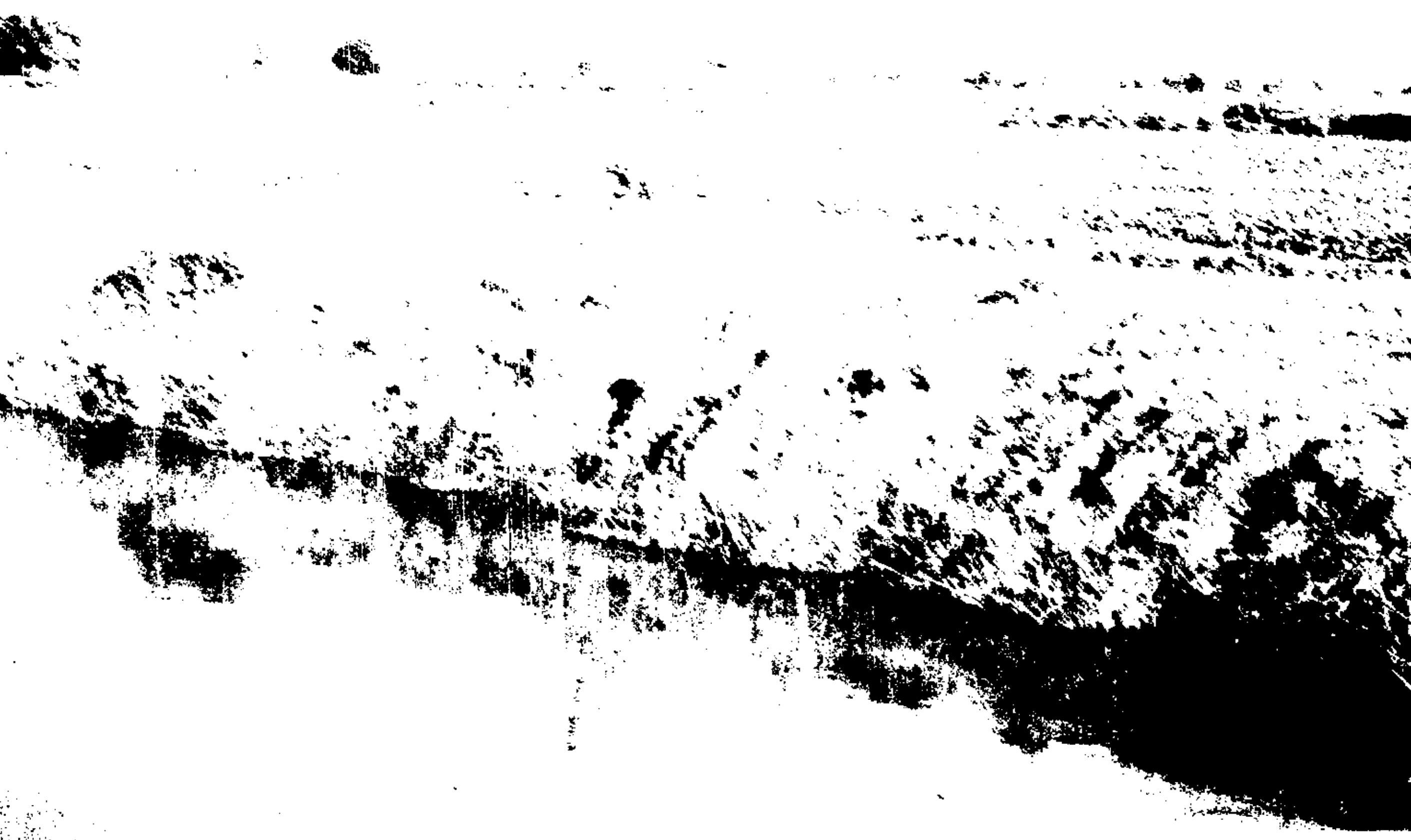

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित